Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

ओ३म्

पाक्षिक

परोपकारी

ऋग्वेद
यजुर्वेद
सामवेद
अथर्ववेद

वर्ष - ५४ अंक - १३ महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा का मुखपत्र जुलाई (प्रथम) २०१३

आर्यवीर दल शिविर २८ मई से ४ जून २०१३
ऋषि उद्यान, अजमेर

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

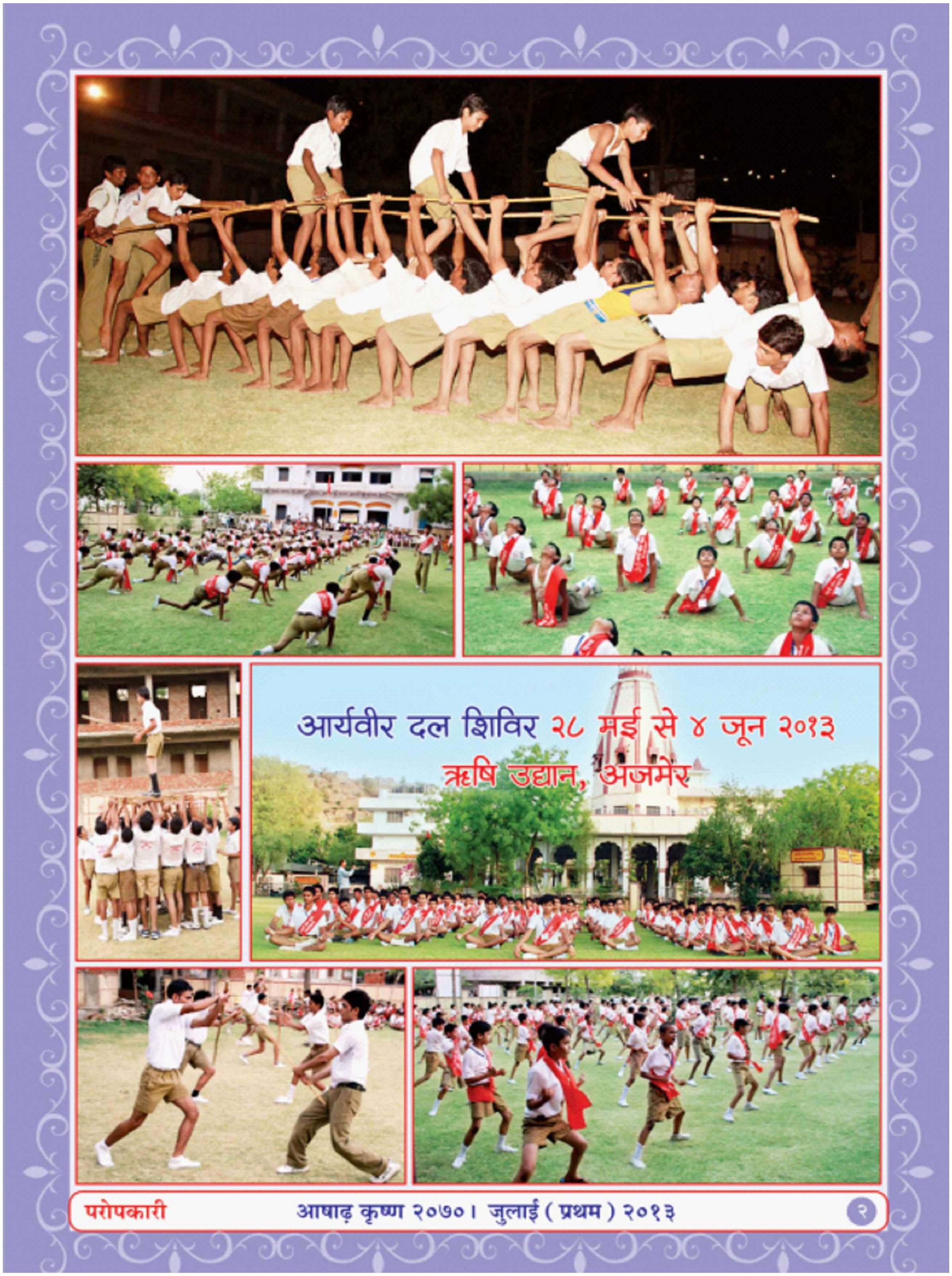

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ५४ **अंक** : १३
दयानन्दाब्द: १८९
विक्रम संवत्: आषाढ़ कृष्ण, २०७०
कलि संवत्: ५११४
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११४

सम्पादक
प्रो. धर्मवीर

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

-परोपकारी का शुल्क-

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु., **त्रिवार्षिक**-५८० रु., **आजीवन**-(=१५ वर्ष)-२००० रु.।

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस. डालर, **द्विवार्षिक**-९५ पा./१५२ डा., **त्रिवार्षिक**-१४० पा./२२५ डा., **आजीवन**-(=१५ वर्ष)-५०० पा./८०० डा.।

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२११७०

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९/५९

परोपकारी

जुलाई प्रथम २०१३

अनुक्रम

१. मर्यादा की समाप्ति-वैश्वीकरण.........	सम्पादकीय	०४
२. परमेश्वर ने क्या दिया और क्या नहीं?	स्वामी विष्वङ्	०८
३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	राजेन्द्र जिज्ञासु	०९
४. वैदिक राज्यव्यवस्था की उपेक्षा.......	डॉ. सुरेन्द्र	१२
५. एक सच्चा श्राद्ध	रीतिका शैलेश	२०
६. श्री वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय द्वारा.........	विरजानन्द	२२
७. भूल-भुलैया	रमेश मुनि	२४
८. वैदिक भक्ति का स्वरूप	आ. शिवकुमार	२५
९. स्वामी वेदानन्द जी से सम्बन्धित......	यशपाल	२९
१०. सत्य को स्वीकारना चाहिए	नारायण प्रसाद	३१
११. किशोर-वय का भटकाव	प्रताप कुमार	३३
१२. वेद और विदेशी विद्वान्	स्वा. सत्यप्रकाश	३५
१३. पुस्तक-परिचय		३७
१४. संस्था-समाचार		३९
१५. आर्यजगत् के समाचार		४१

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

- उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं -
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

मर्यादा की समाप्ति-वैश्वीकरण का उद्देश्य

मर्यादा एक संस्कृत का ऐसा शब्द है, जिससे सामान्य से सामान्य भारतीय परिचित है। यह शब्द भारतीय इतिहास के जन-नायक श्री रामचन्द्र का विशेषण बना हुआ है। मर्यादा कहते ही मर्यादा पुरुषोत्तम राम का नाम हमें स्मरण आता है। इसी विशेषता के कारण उन्हें पुरुषोत्तम कहा जाता है। मर्यादा पालन के कारण ही वे सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं। मर्यादा शब्द वैदिक है, ऋग्वेद के एक मन्त्र में सप्त मर्यादा शब्द आता है। मन्त्र में मर्यादा की पालना करने की बात कही गई। मर्यादा को तोड़ना पाप कहा गया है परन्तु वहाँ मर्यादाओं का स्पष्टत: कोई उल्लेख नहीं किया गया। वहाँ मर्यादा की संख्या का निर्देश अवश्य है। मर्यादाएँ सात बताई गई हैं। सात मर्यादा कौन सी हैं, इसकी चर्चा निरुक्तकार ने इसी मन्त्र की व्याख्या में की है, वे कहते हैं-''स्तेय-अर्थात् चोरी करना, तल्पारोहण-अर्थात् व्यभिचार करना, ब्रह्महत्या-अर्थात् विद्वान् की हत्या करना, भ्रूण हत्या-अर्थात् जन्म से पूर्व गर्भस्थ शिशु की हत्या करना, सुरापान-अर्थात् शराब पीना, दुष्कृत कर्म का बार-बार दोहराना, तथा पातक निम्न कार्य करके उसमें झूठ बोलना, शास्त्रकारों ने इनको मर्यादा का हनन कहा है। वेद ने मार्यादा का पालन करने की बात की है। शास्त्रकारों ने इस शब्द की व्याख्या करते हुए कहा इसको मर्यादा इसलिए कहते हैं, यह मनुष्यों द्वारा निर्धारित या स्वीकृत की जाती है। इस का एक अर्थ सीमा भी होता है, संसार में सीमा मुख्य रूप से भौगोलिक सन्दर्भ में प्रयुक्त होने वाला शब्द है। संसार की सीमाएँ मनुष्यों द्वारा निर्धारित एवं स्वीकृत की जाती हैं।

संसार में मनुष्य के जीवन को सुरक्षित करने के लिए ही सीमाओं का निर्धारण किया जाता है। देश, समाज, व्यक्ति जहाँ भी कोई किसी की भूमि का अतिक्रमण करता है, वहीं पर विवाद होता है। सीमा के सन्दर्भ में दोनों बातें महत्त्वपूर्ण हैं, प्रथम अपनी सीमा की जानकारी और उसका संरक्षण तथा दूसरी बात है किसी की सीमा का अतिक्रमण न करना। इन दोनों बातों के चलते शान्ति और संयम बना रहता है। इनके अतिक्रमण से दोनों ओर अशान्ति और दु:ख का वातावरण बन जाता है।

एक व्यक्ति अपने घर की सीमा की सुरक्षा करता है, दीवार बनाता है, दरवाजा लगाता है। यदि कोई उसका उल्लंघन करता है तो झगड़ा, विवाद होता है। वह न्यायालय जाता है, विवाद सुलझाने का यत्न करता है, जब तक सीमा का निश्चय नहीं होता, विवाद चलता रहता है। यही स्थिति खेत-खलिहान, मकान, दुकान, गाँव, देश सब की होती है। सीमा जहाँ ईश्वर की बनाई है, वहाँ तो कोई विवाद सम्भव नहीं, परन्तु जहाँ-जहाँ मनुष्य ने सीमा बनाई है, वह सीमा बदलती रह सकती है, परन्तु सुख तभी होता है, जब सीमा दोनों को मान्य होती है, इसी में दोनों का हित भी निहित होता है। जैसे सीमा भूमि या स्थान की होती है वैसी ही सीमा जीवन के अन्य क्षेत्र में भी बनानी पड़ती है। हम वस्त्र नहीं पहनते, न पहनना चाहें, परन्तु यह बात तभी चल सकती है, जब वो लोग भी इसे स्वीकार कर लें जिनके मध्य हम निवास करते हैं। भारतीय समाज में दिगम्बर जैन साधु नंगे घूमते हैं, उनके समाज ने उन्हें वस्त्र न धारण करने की मर्यादा से बान्धा हुआ है। इसी समाज में पुरुष तो साधु होकर दिगम्बर हो सकता है, परन्तु महिला साध्वी दिगम्बर होकर समाज में बाहर नहीं घूम सकती। इस पर सहमति व असहमति हो सकती है, यह उचित है या अनुचित, परन्तु समाज ने स्वीकार किया है इसलिए ऐसा हो सकता है। मर्यादा समझदार व्यक्ति के लिए होती है, जिसको समाज से व्यवहार करना होता है। जो पागल हो, समाज की जिसे कोई आवश्यकता ही नहीं हो, उसके लिए समाज न मर्यादा बना सकता है, न उससे मनवा सकता है। यही स्थिति धन, वस्तुएँ और साधनों की हो सकती हैं।

जहाँ समाज मर्यादा से चलता है उसी प्रकार परिवार व व्यक्ति के जीवन में मर्यादाओं का निर्धारण किया जाता है, सभी उसके अनुकूल चलते हैं, उसे स्वीकार करते हैं तो व्यवस्था ठीक प्रकार से चल सकती है। यदि इसका उल्लंघन होगा तो विवाद, असुविधा, दु:ख होना स्वाभाविक है। अब प्रश्न उठता है, आज इस विषय पर विचार करने की क्या आवश्यकता है, जो जैसा मानता-जानता है, वह वैसा करता आ रहा है। यह चिन्तन क्यों आवश्यक है, यह बात हमारी समझ में सहज आ सकती है, यदि बाजार पर हम एक बार दृष्टिपात कर लें। बाजार में खड़े होने पर हमें लगता है, सारी दुनिया, जैसे मनुष्य की सहायता के लिए दौड़ पड़ी है। बाजार पुकार-पुकार कर कह रहा है, आओ मैं तुम्हें सुविधा का ढेर दे रहा हूँ। इन का भरपूर उपयोग करो। साथ ही बाजार अपने और उपभोक्ता के मध्य आने वाली बाधा मर्यादा की दीवार को तोड़कर व्यक्ति को स्वतन्त्र करना चाहता है। देखने से ऐसा लगता है, यह बड़ा उचित विचार है। उपभोग की वस्तुओं और उपभोक्ता के

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

मध्य कोई बाधा क्यों रहनी चाहिए। यह बाधा क्यों है, और किसने बनाई है। कुछ बाधाएँ मनुष्य ने बनाई हैं, उनके ठीक या गलत होने पर विचार किया जा सकता है। शेष बाधाएँ प्रकृति ने बनाई है, उनके विषय में केवल यह विचार किया जा सकता है कि इसके पालन करने में क्या लाभ है तथा इस मर्यादा के भङ्ग करने में क्या हानि है।

हमें बाजार कहता है, जीवन को इच्छानुसार जीओ, किसी बन्धन को स्वीकार मत करो, जैसे काम-सम्बन्धों में सबसे अधिक मर्यादा बोध होता है, मत-मतान्तर, धर्म-सम्प्रदाय इसके सम्बन्ध में मर्यादा बनाकर व्यवहार करते हैं। यह मर्यादा आयु की हो सकती है, लड़के या लड़की का विवाह किस आयु में होना चाहिए। हम विवाह बचपन में कर सकते हैं, परन्तु विवाह के उद्देश्य में और वैवाहिक जीवन में सफलता अपवाद से ही मिल सकती है। इसलिए समझदार लोगों ने विवाह के लिए एक सामान्य आयु का निर्धारिण किया। वह सभी सम्प्रदायों में भिन्न-भिन्न होने पर भी उसके पीछे विवाह के उद्देश्य की सुरक्षा अवश्य सोची गई है। परन्तु बाजार विवाह की बात नहीं सोचता। बाजार, इच्छाएँ उत्पन्न हुई हैं तो उन्हें पूरा करो, इस बात पर जोर देता है। वह कहता है, इच्छा और विवाह में विवाह गौण है, इच्छा मुख्य है। बालक-बालिकाओं के सम्बन्धों की इच्छा बाल्यवय में प्रारम्भ हो जाती है तो बाजार उन इच्छाओं को भुनाना चाहता है। वह कहता है विवाह भले ही मत करो पर शारीरिक सम्बन्धों को चलने की स्वतन्त्रता दो। यहाँ पर बाजारवाद मर्यादा को समाप्त करने को स्वतन्त्रता मानता है, इसमें सुख बतलाता है। लगता भी है, यह स्वतन्त्रता सुख देगी, परन्तु इससे जीवन के मुख्य साधन, बच्चों के स्वास्थ्य और पढ़ाई का क्या होगा? क्या यह मर्यादाहीनता इस कार्य में सहयोग करेगी या बालकों के भविष्य को गहरे अन्धकार में धकेलेगी। इसी प्रकार विवाह की आयु में विवाह तो मत करो, परन्तु शारीरिक सम्बन्ध को स्वतन्त्रता से बनाये रखो। इस परिस्थिति में सम्बन्ध, निश्चित व्यक्ति से रखने की मर्यादा समाप्त हो जानी चाहिए। यह बाजार का दृष्टिकोण है। इसमें बाजार आपकी सहायता और मार्गदर्शन के लिए प्रस्तुत है। विवाहेतर शारीरिक सम्बन्धों की बाधा सन्तान है, उसके न होने के साधन, बाजार में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इसमें किसी एक पुरुष का एक महिला के साथ सम्बन्ध की मर्यादा स्वयं समाप्त हो जायेगी। इससे आगे जो इस स्वतन्त्रता से हानि होती है वह है रोग। रोगों से बचने के लिए बाजार में नित नई दवायें आ रही हैं। जब एन्टीबायोटिक्स का आविष्कार हुआ था तब यही लगा था कि अब भोग से रोग का भय समाप्त हो गया है। पाश्चात्य जगत् में इसे बहुत बड़ी उपलब्धी समझा गया था। परन्तु रोग की समाप्ति नहीं हो सकी। जब हम मर्यादा का अतिक्रमण करते हैं, तब हमें अपनी भूल या अपराध का पता होता है, परन्तु मर्यादा न होने की दशा में अपराध करने पर भी मनुष्य स्वयं को अपराधी नहीं समझता। मर्यादाहीनता अपराधबोध की सम्भावना समाप्त कर देती है। तब उसके लिए चोरी, चोरी नहीं रहती, व्यभिचार, व्यभिचार नहीं रहता, झूठ, झूठ नहीं रहता क्योंकि यह सब तो तभी होता है जब समाज या व्यक्तिगत जीवन में मर्यादा हो, जब मर्यादा ही नहीं है तो अपराध कहाँ से होगा। तब भोग में स्त्री-पुरुष ही क्यों तब तो समलैंगिकता भी वैध होगी। इसके अतिरिक्त भी कुछ हो सकता है, तो वह सब मनुष्य की स्वतन्त्रता, उसके अधिकार, उसकी इच्छा का विषय बन जाता है। उचित-अनुचित के विचार का अवसर ही समाप्त हो जाता है।

मर्यादा से समाज व व्यक्ति की रक्षा होती है। आप मर्यादा तोड़कर लाभ और स्वतन्त्रता अनुभव कर सकते हैं। वह एकाङ्गी दृष्टिकोण है। कोई भी बात यदि कहीं लाभदायक प्रतीत होती है तो इसका अभिप्राय यह कभी नहीं हो सकता कि वह बात सभी स्थानों पर लाभदायक हो। इन दिनों मई के तीसरे सप्ताह के समाचार-पत्रों में एक समाचार बड़ी प्रमुखता से छपा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन ने विश्व के लोगों को परामर्श दिया है कि सभी लोग अपने नियमित भोजन में कीड़े-मकोड़ों को महत्त्व दें। ये कीड़े विटामिन, प्रोटीन और खनिज के बड़े स्रोत हैं। पर्यावरण की दृष्टि से और वस्तुओं के उत्पादन पर पर्यावरण में अस्वास्थ्य के तत्त्व बड़ी मात्रा में उत्सर्जित होते हैं, जबकि कीड़े-मकोड़े कम ही ऊर्जा की आवश्यकता रखते हैं। किसान लोग इन कीटों को मारने के लिए कीटनाशकों का प्रयोग करते हैं, जिससे वातावरण तथा फसल दोनों ही प्रदूषित होते हैं। इसके विपरीत कीटों का संग्रह करके खाने से पर्यावरण का प्रदूषण बच जाता है, कीटनाशकों का व्यय बच जाता है, भोजन की समस्या हल हो जाती है। अतः घर, गली, खेत को कीड़ों से मुक्त रखने का सबसे अच्छा तरीका है, इनको भोजन में सम्मिलित कर लिया जाए। यह परामर्श वैज्ञानिकों की ओर से संयुक्तराष्ट्र जैसी संस्था का है। इसकी प्रामाणिकता और औचित्य पर कौन प्रश्न चिह्न लगा सकता है।

हो सकता है यह जो कहा जा रहा है, उचित हो परन्तु, यह बात का एक पक्ष है। कोई भी वस्तु मनुष्य को दो प्रकार से प्रभावित करती है, उसका प्रभाव एक तो उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर तथा दूसरा उसके आन्तरिक विचारों पर पड़ता है। उसकी मन, बुद्धि, आत्मा मनुष्य के अचार और आहार प्रभावित नहीं होते ऐसा वैज्ञानिक भी नहीं कह सकते। हर अन्न, फल, शाक आदि अपने-अपने गुणों के

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

कारण किसी के अनुकूल और किसी के प्रतिकूल होते हैं, फिर सब वस्तुएँ सबके लिए समान रूप से लाभकारी हों यह सम्भव नहीं। हमारे पुराने विचारकों ने वस्तुओं के साथ फल, मूल, कन्द, शाक, अन्न और मांस के भी गुण-दोषों का वर्णन किया है, जिससे उससे होने वाले हानि-लाभ का पता चलता है। आपकी बात विटामिन, प्रोटीन, मिनरल पर समाप्त हो जाती है, उसका मनुष्य पर क्या प्रभाव होगा, इस पर विचार करना आपकी परम्परा में ही नहीं है। इसके अतिरिक्त हर प्राणी का पर्यावरण चक्र में एक विशेष स्थान और महत्त्व है। उसका बढ़ना घटना पर्यावरण को प्रभावित करता है। हमारे देश में तथा संसार के अन्य बहुत से देशों में वनस्पतियों के साथ-साथ प्राणियों की प्रजातियाँ भी लुप्त हो गई हैं। जिनके कारण पर्यावरण का चक्र बिगड़ गया है। भारत से अमेरिका को केकड़े, मेंढकों का इतना निर्यात हुआ कि आज हमारे देश में इनका अभाव लगने लगा है। इनकी कमी से जिन कीड़ों को मेंढक खाते थे, उनकी संख्या बढ़ गई और कृषि की प्राकृतिक सुरक्षा समाप्त हो गई। आप सब कुछ निश्चित रूप से खा सकते हैं, परन्तु वह सब अच्छा ही होगा यह निश्चित नहीं हो सकता।

अगली बात जिस पर आधुनिक विज्ञान विचार करने की आवश्यकता नहीं समझता वह है मर्यादित भोजन और व्यवहार का हमारे मन और आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है। हमारे पुराने आचार्यों, ऋषियों ने मनुष्य को शाकाहारी बनने की प्रेरणा दी है। जब किसी को चुनने का विकल्प देते हैं तब कम से कम दो वस्तुएँ हमारे सामने होती हैं। हम सभी का उपयोग कर सकते हैं। हम मांसाहारी भी हो सकते हैं, और शाकाहरी भी। मनुष्य के सामने जब चुनाव की बात आती है, तब चुनाव श्रेष्ठ का होता है। चुनाव शाकाहार का होता है। चुनाव मांसाहार का नहीं होता। कोई भी मनुष्य ऐसा मांसाहारी नहीं है जो शाकाहार को छोड़कर मांसाहार अपनाता है। जो भी मांसाहारी है, वह शाकाहार तो लेता ही है, उसका इसके बिना काम नहीं चल सकता। अतः चुनाव शाकाहार का ही होता है, क्योंकि शाकाहारी बिना मांसाहार के रह सकता है।

जब हम बिना मर्यादा के कोई काम करते हैं, उसमें अपवाद या निषेध का स्थान समाप्त हो जाता है। हम जब शाकाहार के साथ मांसाहार को उतना ही उचित मानते हैं तो फिर कहीं भी प्रतिबन्ध नहीं लग सकता, आप मुस्लिम हैं, सुअर नहीं खा सकते, आप हिन्दु हैं, गोमांस नहीं खाना चाहते। ये सब प्रतिबन्ध विज्ञान की भाषा में व्यर्थ हो जाते हैं। जब मांस खाया जाना है तो क्या कीड़े-मकोडे, क्या गाय-भैंस, सुअर। इससे भी आगे बात जाती है, जब हम जीव-जन्तुओं को मारने के अधिकारी हो जाते हैं तो फिर उसको कैसे मारें इसमें भी कोई बाधा नहीं रहती, और कामों के लिए, शृंगार सामग्री के लिए, दवाइयों के लिए, जूते-वस्त्रों के लिए अलग-अलग गुणवत्ता की वस्तु जानवर से प्राप्त करते हैं। उसकी चर्चा का यह प्रसंग नहीं, परन्तु हम खाने के लिए भी पशुओं को अलग-अलग तरीके से मारते हैं। कोई झटका करता है, तो दूसरा हलाल करता है, कोई जिन्दा ही आग में डाल देता है, कोई पीट-पीट कर मार देता है, कोई गर्भ गिराकर खाना पसन्द करता है। क्रूरता जब सुख देती है, तब क्रूरता करके केवल अपना मनोरंजन करते, तब आपको दुःख नहीं होता, क्योंकि अपने-अपने क्षेत्र में उचित-अनुचित की रेखा नहीं खींच रखी। आपके पास मर्यादा नहीं है, आपकी कोई सीमा नहीं है, आप कुछ भी कर सकते हैं, कहीं तक भी जा सकते हैं।

हम अपने घर की चार-दीवारी तोड़कर अपने घर को बड़ा होने की कल्पना कर सकते हैं, परन्तु असंख्य चोरों, डकैतों के लिए घर खुल जाने की बात भूल जाते हैं। यही स्थिति मर्यादा भङ्ग करने की है। हमारे ऋषियों ने 'मांस न खाने का नियम' मनुष्य के लिए केवल अखाद्य है, इतने मात्र से नहीं बनाया, हमारे पूर्वज मनुष्य को मनुष्य से सुरक्षित रखने के लिए इस नियम की आवश्यकता समझते थे। इस नियम को हम अपने इतिहास के एक उदाहरण से समझ सकते हैं। यदि नेहरू जी ने तिब्बत, चीन को न दिया होता, तो आज चीन हमारी सीमाओं पर आक्रमण नहीं कर सकता था। उसी प्रकार यदि मनुष्य पशुओं का मांस न खाकर शाकाहारी रहता तो वह मनुष्य का मांस खाने का अपराध नहीं करता। जब सीमा ही नहीं रही, तो कोई किसी का भी मांस खा सकता है। मनुष्य, मनुष्य का मांस भी खा सकता है, और खाता है। भारत में नागालैण्ड में मनुष्य का मांस खाया जाता है, जापान, ताइवान में मनुष्य भ्रूणों का मांस सबसे उत्तम समझा जाता है। जब हम पशुओं पर क्रूरता करते हैं, हमारा स्वभाव ही क्रूरता करने का बन जाता है। तब हमें वही व्यवहार किसी के साथ करने में भी संकोच नहीं होता। गत दिनों गुजरात यात्रा के प्रसंग में दिल्ली के पड़ोसी प्रदेश के सरकार के उत्तरदायी व्यक्ति मिले उन्होंने तथ्य बताये, उससे उपरि लिखित बात की पुष्टि होती है। उन्होंने बताया दिल्ली के आसपास ऐसा क्षेत्र है जिसमें अपराध की प्रवृत्ति बहुत है, वे बाहर वालों के साथ तो अपराध करते ही हैं, परन्तु परस्पर भी उनका द्वन्द्व चलता रहता है, जब एक पक्ष, दूसरे पक्ष की हत्या करता है, तो पीड़ित पक्ष पुलिस में हत्या की सूचना लिखाता है, तब तक पहला पक्ष घर जाता है, घर में अपनी महिला का गर्भ गिरा देता है अथवा अपने किसी छोटे बच्चे की हत्या कर देता है और पुलिस में दूसरे पक्ष पर हत्या का

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

अपराध अंकित कराता है। इस प्रकार दोनों हत्या के दोषी हो जाते हैं। यह व्यवहार वहाँ के वातावरण में सामान्य बात है, क्योंकि जब हमारे मन से अच्छे-बुरे के बीच की रेखा समाप्त हो जाती है तो फिर व्यक्ति के लिए कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं बचता।

आजकल का वैश्वीकरण तन्त्र एक ही कार्य में लगा है, आपके मन से अच्छे-बुरे की रेखा मिटा दे। आपके अन्दर से अच्छे होने का भाव समाप्त कर दे, आज यही वैश्वीकरण है। इसलिए वेद ने मनुष्य के लिए मर्यादाओं का विधान किया था, जिससे मनुष्य अपने को पशु से भिन्न समझ सके। अतएव वेद में कहा गया है-

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरोगात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ।।

ऋग्वेद-१०/५/६

सात मर्यादा का क्रान्तदर्शी ऋषियों ने धर्म की बनाई है। उनमें से एक का भी उल्लंघन करके मनुष्य पापवान् होता है।

-**धर्मवीर।**

न्याय-दर्शन का अध्यापन

महर्षि गौतम प्रणीत **न्याय-दर्शन** और उस पर लिखा **वात्स्यायन-भाष्य** प्रमाण व अर्थतत्त्व को समझने की प्रक्रियाओं का सर्वाङ्गपूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है। सभी वैदिक-अवैदिक दर्शनों को अपने मान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करते समय इस पद्धति का प्रयोग करना अपेक्षित होता है। न्याय-दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'प्रमाण' है। 'प्रमाण' को ठीक प्रकार जानने से ही तत्त्वनिश्चय ठीक हो पाता है, तभी मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त हो पाता है। प्रमाण ज्ञान से चिंतन-विचार की प्रक्रिया ठीक हो पाती है, नहीं तो अनजाने में मिथ्या सिद्धान्त गले पड़ जाते हैं। न्याय-दर्शन के अध्ययन से किसी भी बात की परीक्षा-समीक्षा की सामर्थ्य बढ़ती है और उचित-अनुचित का निर्णय सरलता-शीघ्रता-शुद्धता से हो पाता है। इस प्रकार यह शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति में अत्यन्त सहायक होता है।

वानप्रस्थ साधक आश्रम, रोजड़, गुजरात में **आचार्य सत्यजित् जी** (ऋषि उद्यान, अजमेर) द्वारा कृष्ण जन्माष्टमी (भाद्रपद कृष्णपक्ष अष्टमी २०७०, २८ अगस्त २०१३) से इसका विधिवत् नियमित संपूर्ण अध्यापन कराया जायेगा। यह दर्शन १०-११ महीनों में जून-जुलाई २०१४ तक पूर्ण होगा। इस बीच प्रत्येक अध्याय की लिखित परीक्षा भी ली जायेगी। कुल ५ परीक्षाएँ होंगी। इनमें ७५ प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करने वालों को '**न्यायाचार्य**', ६१ से ७५ प्रतिशत तक अङ्क वालों को '**न्याय-विशारद**' व ५१ से ६० प्रतिशत तक अङ्क वालों को '**न्याय-प्राज्ञ**' की उपाधि दी जायेगी। इस कक्षा में संस्कृत से परिचित साधक प्रकृति के ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी, संन्यासी पुरुष व महिलाएँ भाग ले सकते हैं। इसमें बुद्धिमान्, स्वस्थ, अपने कार्यों को स्वयं करने में समर्थ, सेवाभावी, अनुशासन में रह सकने वाले अधिकतम २० पूर्णकालिक व्यक्तियों का स्थान है।

इस काल में समय-समय पर स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक का उपदेश-आशीर्वाद व सान्निध्य भी प्राप्त होता रहेगा। बीच-बीच में विभिन्न विद्वानों द्वारा अन्य विविध विषयों पर भी कक्षा एवं उपदेश होते रहेंगे। ब्रह्मचारियों संन्यासियों व अन्य असमर्थों हेतु निवास व भोजन व्यवस्था निःशुल्क है। समर्थ प्रतिभागी इच्छानुसार सहयोग कर सकते हैं। माताओं-बहनों के लिए निवास की पृथक् व्यवस्था रहेगी। **सम्पर्क**-९४१४००६९६१ (आचार्य सत्यजित्) **रात्रि ८.०० से ८.३०। पता**-वानप्रस्थ साधक आश्रम, आर्यवन, रोजड़, पत्रालय-सागपुर, जिला-साबरकांठा, गुजरात-३८३३०७, ईमेल-vaanaprastharojad@gmail.com, styajita@yahoo.com

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

परमेश्वर ने क्या दिया और क्या नहीं दिया?

-स्वामी विष्वङ्

मनुष्य के ज्ञान की दृष्टि से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में प्राणियों की संख्या असंख्य है। एक मनुष्य ही नहीं, बल्कि सारे मनुष्य मिलकर भी सब प्राणियों की संख्या को गिन नहीं सकते। मनुष्यों की दृष्टि से न गिनने की स्थिति में असंख्य कहा जाता है। परन्तु परमेश्वर की दृष्टि से प्राणियों की संख्या सीमित है। क्योंकि परमेश्वर अपनी असीमित शक्ति से सभी प्राणियों को गिनता है, इसलिए परमेश्वर सब के कर्म-फल को ठीक-ठीक प्रदान करता है।

अनेक बार, अनेकों लोग परमेश्वर को कोसते रहते हैं कि "हमें कुछ नहीं दिया, हमें क्या दिया, हमें यह नहीं दिया, हमें वो नहीं दिया" इत्यादि अर्थात् कोई कहता है हमें आंखें नहीं दी, कोई कहता है हमें वाणी नहीं दी, कोई कहता है हमें हाथ, पाँव, नाक या और कोई अंग नहीं दिया, कोई कहता है हमें अच्छे माता-पिता नहीं दिये, कोई कहता है हमें जमीन नहीं दी। यदि एक-एक को लिखने लगे, तो लिखते ही जायेंगे, लिखना बन्द नहीं हो पायेगा। जितने मनुष्य उतनी शिकायतें। शिकायतों की कतार बड़ी लम्बी बनेगी।

ऐसा सोच-विचार रखना भौतिकवादी के लिए सामान्य हो सकता है, परन्तु यही सोच-विचार आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए अत्यन्त घातक होगा। एक ओर परमेश्वर को परमेश्वर स्वीकार किया जा रहा है और दूसरी ओर परमेश्वर पर शक (शंका) किया जा रहा है। यदि परमेश्वर के विषय में किसी से भी यह पूछा जाये कि 'क्या परमेश्वर न्यायकारी है या अन्यायकारी? उत्तर यह मिलेगा कि परमेश्वर न्यायकारी है। यदि परमेश्वर न्यायकारी है तो शक नहीं कर सकते और शक करना है, तो परमेश्वर न्यायकारी नहीं हो सकता। परन्तु साधनों के अभाव से ग्रस्त जनता इस बात को नहीं समझ सकती है। यह ही समझ का अभाव कभी-कभी साधना करने वाले आध्यात्मिक व्यक्तियों में भी देखा जाता है। साधनों के अभाव की पीड़ा इतनी गहरी होती है कि साधना के पथिक का सारा ज्ञान दब जाता है और वह साधक भी परमेश्वर को कोसने लगता है।

यह कैसी विडम्बना है देखिये-परमेश्वर ने सारे साधन दिये हैं पर किसी को आँख, किसी को कान, किसी को नाक या किसी को वाणी नहीं दिये। एक अंग या साधन नहीं है, बाकी सभी अंग या साधन हैं। सब कुछ दिये जाने पर भी एक साधन को लेकर साधक के मन में परमेश्वर के प्रति शक (शंका) उत्पन्न हो रहा है। ऐसी स्थिति में साधक, साधना को साधना के रूप में समुचित पद्धति से नहीं कर पायेगा। साधक को यह विचार करना चाहिए कि जितने भी साधन मिले हुए हैं, वे मेरे कर्मों के आधार पर ही मिले हैं और जो भी साधन नहीं मिले हैं, वे भी मेरे कर्मों के आधार पर ही नहीं मिले हैं। यदि इस बात को साधक समझता है, तो इस समझ को विवेक के रूप में बदले। क्योंकि समझने मात्र से प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है। इसलिए उस समझ को विवेक में बदलना चाहिए और उस विवेक को भी वैराग्य में बदलना पड़ता है। उसी स्थिति में साधक के मन में फिर कभी परमेश्वर के प्रति शक (शंका) नहीं होगा।

साधक को यह भी समझ लेना चाहिए कि परमेश्वर ने हमें जितने भी साधन दिये हैं, उन साधनों से भी हम अपने प्रयोजन को पूर्ण कर सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य हैं कि समय में थोड़ा बहुत आगे-पीछे हो सकता है, परन्तु प्रयोजन को अवश्य पूरा कर सकते हैं। सब साधन उपलब्ध हैं पर एक-आध साधन के अभाव में हताश-निराश होने की आवश्यकता नहीं है। चाहे आँख न हो, चाहे कान न हो, चाहे हाथ न हो, चाहे पाँव न हो, परन्तु हमारी बुद्धि कार्य कर रही है, तो बहुत है। उस बुद्धि के बल पर हम वह सबकुछ कर सकते हैं, जो मनुष्य के द्वारा करने योग्य है।

हम पर परमेश्वर की इतनी अधिक कृपा है कि हमें वह अमूल्य बुद्धि दी है, जो किसी और प्राणी में देखने को नहीं मिलती है, यदि मनुष्य यह विचार न करे कि 'मुझे यह नहीं दिया, वो नहीं दिया' बल्कि यह विचार करे कि जो भी परमेश्वर ने मुझको साधन दिये, उन साधनों का प्रयोग कैसे करूँ, जिससे अपने प्रयोजन को पूरा कर सकूँ। हमें जितने भी साधन मिले हुए हैं, उनका भी पूरा प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं, अर्थात् सदुपयोग कम हो रहा है और दुरुपयोग अधिक हो रहा है। एक-एक साधन के दुरुपयोग को रोक-रोक कर उसे सदुपयोग में लगाया जाए, तो हमें समय की कमी दिखाई देगी और साधनों की अधिकता दिखाई देगी। परमेश्वर ने उदार मन से इतने साधन उपलब्ध कराये हैं कि उनका सदुपयोग करने का समय ही बच नहीं पाता है, तो और अधिक साधनों को पाकर भी क्या कर लेंगे? हाँ, जो भी साधन उपलब्ध हैं, उनका कितना प्रतिशत प्रयोग किया और कितना प्रतिशत प्रयोग नहीं किया, इसका आंकलन किया जाए, तो मनुष्य को अनुभूति होगी कि साधन कम मात्रा में हैं या अधिक मात्रा में हैं। साधन कम हैं या अधिक हैं, यह बड़ी बात नहीं है, बल्कि उन साधनों का समुचित प्रयोग कितनी मात्रा में किया और कितनी मात्रा में नहीं किया। साधक को उपयोग की दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए, न कि साधनों को पाने की दिशा में। परमेश्वर ने हमें क्या नहीं दिया? सब कुछ दिया है, ऐसी मति से ही साधक साधना कर सकता है।

-ऋषि उद्यान, अजमेर।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

कुछ तड़प-कुछ झड़प

-राजेन्द्र जिज्ञासु

स्वामी देवव्रत जी का प्रश्न-इन दिनों श्री स्वामी देवव्रत जी से भेंट हुई तो आपने महर्षि के जीवन चरित्र पर चर्चा छेड़ते हुए एक प्रश्न कर दिया। आपने कहा कि राधा स्वामी सम्प्रदाय के लोग यह कहते हैं कि ऋषि दयानन्द जब आगरा आये थे, तो आपने राधा स्वामी मत के संस्थापक से दीक्षा (मन्त्र) ली थी तभी तो सत्यार्थप्रकाश में राधास्वामी मत की समीक्षा नहीं की गई।

हमने श्री स्वामी जी के प्रश्न का स्वागत करते हुए कहा कि यह प्रश्न कई सज्जनों ने इन दिनों किया है। राधास्वामी इस बात का बड़ा प्रचार कर रहे हैं तभी तो अनेक नगरों में इसकी चर्चा सुनी गई। हमने संक्षेप में तो सबको बता दिया कि यह कथन मनगढ़न्त कहानी है। इसका सप्रमाण उत्तर हमने पूज्य लक्ष्मण जी के ग्रन्थ का अनुवाद सम्पादन करते हुए दे दिया है। प्रश्न का टालने वाला उत्तर तो कोई भी दे सकता है परन्तु पूज्य लक्ष्मण जी की शैली में इसका उत्तर देने की आवश्यकता है, जिससे फिर किसी को ऐसा कहने का साहस ही न हो।

श्री स्वामी देवव्रत जी के मुख से यह प्रश्न सुनकर हमने परोपकारी में इसका उत्तर देने का निर्णय किया। राधा स्वामी भाइयों को इस बात का ज्ञान नहीं कि उनके तीन गुरुओं की पोथियों में ऋषि दयानन्द की चर्चा है।

१. बाबा सावनसिंह जी डेरा व्यास से छपी एक पोथी (नाम इस समय याद नहीं) में ला. रोशनलाल जी बैरिस्टर से धर्मचर्चा के समय ऋषि दयानन्द का नामोल्लेख हुआ। तब महाराज सावनसिंह जी ने तो इस हदीस की वहाँ चर्चा नहीं की। बाबा सावनसिंह जी का श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी से बहुत मेल मिलाप था। वह कई बार अपने चेलों को मठ में औषधि उपचार के लिये भी भेजा करते थे। बाबा जी ने भी श्री स्वामी जी को यह कहानी कभी न सुनाई।

२. दयालबाग़ गद्दी के तीसरे गुरु हजूर महाराज (श्री शिवव्रत लाल वर्मन) बहुत प्रसिद्ध उर्दू लेखक थे। वह थे भी ऋषि दयानन्द के काल के। आपने भी ऋषि की जीवनी लिखी है। इस पुस्तक में महर्षि के विरुद्ध भी बहुत कुछ लिखा है और गुणगान भी बहुत किया है। इस पुस्तक में भी इस हदीस को गुरु महाराज ने स्थान नहीं दिया। उसी काल के राधा स्वामी गुरुजी को तो इसका ज्ञान न हुआ और अब यह कहानी पता नहीं किस ने प्रचारित कर दी? यह गप्प है इस कारण हमने कभी इसे विशेष महत्त्व न दिया।

३. राधास्वामी मत के एक और गुरु श्री आनन्द स्वरूप जी (जो लाहौर डी.ए.वी. कॉलेज के विद्यार्थी रहे) ने ऋषि दयानन्द तथा सत्यार्थप्रकाश के खण्डन में एक पोथी लिखी थी। इसका उत्तर आर्य विद्वानों ने दिया। सर आनन्द स्वरूप ने भी अपनी पुस्तक में इसका उल्लेख नहीं किया। वह जब लाहौर में कॉलेज की स्वर्ण जयन्ती पर बोले तब भी यह कहानी सुना सकते थे परन्तु..........।

कादियाँ में एक राधास्वामी लेखराम बाजार में दुकान किया करता था। पूज्य पं. त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री का वह बड़ा भक्त था। इन पंक्तियों के लेखक से भी वह सज्जन बड़ा प्रेम करता था। हम दोनों को बिठाकर लम्बी-लम्बी चर्चा छेड़ देता था। यह पचास वर्ष से भी पहले की बात है। उस प्रेमल भाई ने भी हमें कभी यह कहानी न सुनाई। उसके पास आगरा का पर्याप्त साहित्य तथा मासिक पत्र की भी फाईल थी। हमारे विवेकशील पाठक तथा राधास्वामी भाई अब विचारकर निर्णय करलें कि जिस कहानी का अब इतना प्रचार किया जा रहा है उसका उपरोक्त तीन गुरुओं को बोध क्यों न हुआ? हजूर जी महाराज की जिस पुस्तक का हमने ऊपर उल्लेख किया है वह आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व छपी थी।

अच्छा हो कि टंकारा ट्रस्ट जैसी संस्थाओं को चलाने वाले भी कभी भ्रान्ति-निवारण के लिए कुछ लेख दिया करें। परोपकारी तो निरन्तर यह कार्य कर रहा है और करता रहेगा।

आर्य सामाजिक साहित्य के प्रूफ-इस विषय पर हम पहले भी लिख चुके हैं। पुस्तकें व लेख तो बहुत भाई लिखते व छपवाते रहते हैं परन्तु मुद्रण की समस्याओं पर अब कोई संगठन विचार नहीं करता। हमारे पास अच्छे प्रूफ़ रीडर तथा कई सुदक्ष कम्प्यूटरकार होने चाहिये। आर्य प्रकाशकों को अब तो इसका कुछ महत्त्व पता चला है, पहले तो केवल गोविन्दराम हासानन्द के पास ही अपना अनुभवी दक्ष प्रूफ़ रीडर था। वह भी कभी-कभी भयंकर भूल कर जाता था।

अभी अजय जी हमारी एक पुरानी पुस्तक का एक नया संस्करण निकाल रहे हैं। स्वामी दर्शनान्द निर्वाण शताब्दी पर छपने वाली इस खोजपूर्ण पुस्तक को पहले श्री राजपाल शास्त्री ने छापा था। अब जो प्रूफ़ रीडर ने हमें यत्र-तत्र इसके मुद्रण दोषों, प्रूफ़ की गड़बड़, छूटे वाक्यों की जानकारी दी तो हमें बड़ा धक्का लगा।

इस कारण हम गुरुकुलों में पढ़ने वाले युवकों व उनके आचार्यों को कहते रहते हैं कि वे इधर भी ध्यान दें। गुरुकुलों के स्नातक कम्प्यूटरकार व प्रूफ़ रीडर बनेंगे तो आर्थिक चिन्ताओं से मुक्ति पायेंगे। आत्म निर्भर बनेंगे और धर्म-सेवा करके यश भी पायेंगे। हमने अभी तक तो किसी भी गुरुकुल के स्नातक

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

को इस क्षेत्र में नहीं देखा। योग गुरु बनकर औषधियाँ बेचते तो देखा है।

आर्यसमाजियों का स्वास्थ्य?–गुजरात के एक बड़े समाज के एक मन्त्री जी ने हमें यह सुझाव दिया कि महर्षि के जीवन चरित्र में कहीं यह उल्लेख अवश्य करना कि आधुनिक काल में भारत में व्यायाम करने का आन्दोलन ऋषि दयानन्द जी ने ही चलाया। वह जहाँ–जहाँ गये ब्रह्मचर्य के पालन करने तथा व्यायाम करने का सन्देश देते रहे। अभी–अभी मध्यप्रदेश में एक भाई ने हमें आर्यसमाज द्वारा अखाड़ों की स्थापना के आन्दोलन की कुछ चर्चा करने की प्रेरणा दी तो एक अन्य ने यह कहा कि अब तो आर्यसमाजी ही जटिल रोगों के शिकार हैं। इसका प्रमाण देते हुए कई पत्रिकाओं के दस अंक आगे धर दिये। सबमें सिद्धान्त चर्चा से कहीं अधिक रोगों पर लेख थे। मानो कि सब आर्यसमाजी रोगग्रस्त हैं अतः पत्रों का मुख्य विषय आज वेद, त्रैतवाद, शंका समाधान, कर्मफल सिद्धान्त, पुनर्जन्म आदि विषयों पर लिखने वाले विरले हैं। सबका प्रिय विषय स्वास्थ्य, रोग और योग है। कुछ एक रानी झांसी तथा क्रान्तिकारियों के विशेषज्ञ हैं। उनकी बात का प्रतिवाद करना कठिन दिखा तो चुप रहना ही उचित जाना।

आर्यसमाज में घुसपैठ या मन्दिरों की नीलामी–दिल्ली आदि कई नगरों में अन्य–अन्य मतों के मानने वाले यथा इस्कान, हरे रामा, राधा स्वामी मत के मानने वाले समाजों के अधिकारी बने बैठे हैं। धर्मप्रचार व धर्मरक्षा हो कैसे? अन्य मतों के मानन वाले अपने पंथ के नाम पर समाज मन्दिरों में बड़े–बड़े हॉल बनवा रहे हैं। इससे आर्यसमाजें धनलोलुप होकर भ्रष्ट होंगी और धीरे–धीरे आर्य मन्दिर–वेद मन्दिर भी नहीं रहेंगे। वरिष्ठ नागरिकों की क्लब के विज्ञापन दैनिक पत्रों में छपते पढ़ लिया करें। इन क्लबों के अड्डे भी समाज मन्दिर है। दुःखी दिल से यह कटु सत्य लिखना पड़ रह है। डी.ए.वी. की प्रादेशिक सभा तथा उपसभा के प्रधान पद से हटते आर्यसमाज के सत्संग में तो क्यों दिखें वे सीधे डेरा व्यास की यात्रायें करते हैं। वर्षों प्रादेशिक के प्रधान रहकर......... आर्यसमाज के व्यवसायी लेखकों व वक्ताओं को अपनी स्वार्थ सिद्धि की चिन्ता है। समाज के लिये खरी–खरी कहकर अपने लाभ से वञ्चित क्यों हों?

एक प्रशंसनीय उद्योग–अलीगढ़ तथा आसपास के आर्य भाई इन दिनों अपने सर्वसामर्थ्य से छलेसर की ठाकुर मुकन्दसिंह जी की यज्ञशाला, वैदिक पाठशाला आदि के जीर्णोद्धार तथा ठाकुर भूपालसिंह, ठाकुर मुन्नासिंह, ठाकुर मुकन्दसिंह जी की स्मृति को चिरस्थायी बनाने का उद्योग कर रहे हैं। हमने डॉ. रूपचन्द जी दीपक के सौजन्य से छलेसर के ऐतिहासिक स्थलों के चित्र प्राप्त करके महर्षि के जीवन चरित्र के प्रथम भाग में दे दिये हैं। अलभ्य चित्रों के प्रकाशन से वहाँ के आर्य भाई भी हर्षित हुए हैं। लीडरों की रुचि सब जानते हैं। सिद्धान्त निष्ठ आर्यों को अलीगढ़ के आर्यों को सहयोग करना चाहिये।

करणीय कार्य कीजिये–श्री डॉ. रूपचन्द जी दीपक इन दिनों पूज्य उपाध्याय जी के ग्रन्थ Philosophy of Dayananda के हिन्दी अनुवाद का कठिन कार्य पूरा करने में जुटे हैं। हमें हर्ष है कि आपने हमारी विनती स्वीकार करके यह करणीय कार्य हाथ में लिया। इसे पूरा करके आप इतिहास में अमर हो जायेंगे। इससे बढ़कर आनन्ददायक समाचार यह है कि आपके ज्येष्ठ पुत्र प्रिय हिमांशु भी ऋषि के मिशन की सेवा का दृढ़ सङ्कल्प करके कुछ ठोस कार्य करने जा रहे हैं। आप सुयोग्य हैं। धर्मनिष्ठ हैं। अपने भविष्य के लिए, समाज सेवा के लिये विनीत से मार्गदर्शन चाहा, तो उन्हें यह सुझाव दिया कि मुम्बई में डॉ. वागीश जी के दिशा निर्देश में किसी सुयोग्य विद्वान् से संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त करें। विश्वविद्यालय के फारसी के विभाग अध्यक्ष से सम्पर्क कर फारसी भाषा सीखने में दो–तीन वर्ष लगावें। फारसी की पढ़ाई की व्यवस्था न हो तो कम से कम तीन वर्ष उर्दू पर अधिकार प्राप्त करने के लिए लगा दें। आपने ऐसा करना मान लिया है। ऐसा न करने से आर्यसमाज की भारी हानि होगी। बातें बनाकर रिझाने वाले युवक तो मिलते ही रहते हैं। महत्त्वाकांक्षाएँ लेकर नई–नई योजनाएँ लेकर तो कई आते–जाते रहते हैं। किसी का सुझाव मानकर ठोस और निरन्तर कार्य करने वाले तो बड़े यत्न से पाँच–छः योग्य सेवाभावी युवक मिले हैं। श्री पं. नरेन्द्र जी कहा करते थे कि हिमालय की गोद में पड़ा प्रत्येक पत्थर कोहिनूर हीरा नहीं हो सकता। इसी प्रकार आज के युग में ऊंची–ऊंची बातें बनाने व योजनाएँ लेकर आपको रिझाने–लुभाने वाला प्रत्येक युवक पं. लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द तथा महात्मा नारायण स्वामी के मिशन के लिए कष्ट सहन नहीं कर सकता।

ऋषि जीवन का चिन्तन–हमारे बड़ों ने महर्षि के जीवन की खोज, लेखन, प्रकाशन व रक्षा के लिये ऐतिहासिक कार्य किया। जब ऋषि मिशन की सामग्री की खोज के लिये कई एक बड़े–बड़े नेताओं व लेखकों से प्रार्थनाएँ की गईं। विज्ञापन दिये गये। घर बैठे जीवनी लिखने को तो एक–आध महापुरुष तैयार हो गया परन्तु एक ट्रैक्ट भी न लिखा गया। तब आर्य जनता का ध्यान वीर शिरोमणि पं. लेखराम जी पर गया। पं. लेखराम जी का ग्रन्थ छपा। इसे पढ़कर सहस्रों युवकों के जीवन पलट गये। पण्डित जी ने आठ वर्ष में इतनी खोज करके दिखा दी कि पचास व्यक्ति तीस–तीस वर्ष लगाकर भी न कर पाते।

राग–द्वेष से पण्डित जी के बलिदान के पश्चात् उनके ग्रन्थ के दोष निकालने व पण्डित जी की निन्दा का अभियान चलाने वाले आगे आये। अपनी–अपनी पुस्तकों की प्रशंसा के पुल बाँधने वालों ने ९० प्रतिशत सामग्री पण्डित जी से ही ली।

पाठक वृन्द! पण्डित जी के एक विरोधी को भी कभी

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

लिखना पड़ा कि **पण्डित जी के सिवाय कोई दूसरा व्यक्ति ऋषि जीवन की खोज के लिए मिलना असम्भव था।** जहाँ स्वामी श्रद्धानन्द जी, पं. इन्द्र जी, पं. विष्णु दत्त जी, पूज्य मीमांसक जी ने पण्डित जी के ग्रन्थ को इतिहास की दृष्टि से बेजोड़ बताया वहीं एक लेखक ने पण्डित लेखराम जी के नाम के साथ कभी 'जी' शब्द का भूलकर भी प्रयोग नहीं किया। उन्हें हुतात्मा, शहीद शिरोमणि अथवा वीर शिरोमणि लिखते हुए जिसका दिल दहलता है वह उनके ग्रन्थ का मूल्याङ्कन क्या कर सकता है? उसके लिये पं. लेखराम के मिशन की पीड़ा कैसे हो सकती है?

आर्यो? ऋषि के जीवन चरित्र का निरन्तर पाठ किया करो। इस पर चिन्तन करो, मनन करो, इसे जीवन में उतारो। इसे मौलवियों, पादरियों, परकीय गोरे-गोरे लोगों के चित्रों की एलबम मत बनाओ। ऋषि जीवन, ऋषि जीवन ही रहने दो। इसमें ऋषि के समर्पित शिष्यों व प्राणवीरों को तो स्थान दो। महर्षि के मिशन के लिये तिल-तिल जीने व जलने वालों की इतनी उपेक्षा तथा तिरस्कार जहाँ पापकर्म है वहाँ इतिहास प्रदूषण भी है।

चारपाई पर रणक्षेत्र में सेनानी-स्वामी दर्शनानन्द निर्वाण-शताब्दी पर परोपकारी के अगले अंकों में हर बार कुछ प्रेरक प्रसंग दिये जायेंगे। उत्तर प्रदेश में एक बड़ा ताल्लुकेदार अपने बिरादरी के अनेक लोगों के साथ विधर्मी होने लगा तो हिन्दुओं में चिन्ता व घबराहट व्याप्त हो गई। अब सबको आर्यसमाज की याद आये। पौराणिकों का एक मण्डल एक बड़े आर्यसमाज में पहुँचा और यह दु:खद सूचना देकर किसी आर्य शास्त्रार्थ महारथी को बुलाने की गुहार लगाई। आर्यों को पता चला कि उसी क्षेत्र के किसी ग्राम में महाराज दर्शनानन्द जी पधारें हैं। आर्यों की टोली तत्काल वहाँ के लिए चल दी। वहाँ जाकर देखा तो स्वामी जी रोग शय्या पर हैं। इन्होंने आने का प्रयोजन बताया पर अब कर ही क्या सकते थे? नरनाहर लेखराम का मित्र स्वामी दर्शनानन्द आत्मविश्वास से भरपूर हृदय से बोला, **''मेरी चारपाई को एक बार वहाँ ले चलो फिर मैं सबको बचा लूँगा।''**

इतना कहने की देर थी कि आर्यों में चारपाई को कन्धे पर उठाने की होड़ लग गई। रोग शय्या पर पड़ा आर्य सेनानी रणक्षेत्र में जाकर डट गया। ताल्लुकेदार को और उसकी बिरादरी को पता लगा। महात्मा ने हुँकार लगाई। कहा, पूछो! क्या पूछना है। आओं! वैदिक धर्म की महिमा बताऊँ। दर्शनानन्द जी के दर्शन मात्र से एक भी व्यक्ति धर्मच्युत न हुआ। यह कहाँ लिखा है? ऐसी रट लगाने वालों को बता दो कि आर्यसमाज के एक शिरोमणि पत्रकार तथा यशस्वी इतिहासकार पं. विष्णुदत्त जी ने उसी युग में यह घटना 'प्रकाश' साप्ताहिक उर्दू में दे दी थी। स्वामी जी के जीवन चरित्र में हमने इसे सुरक्षित कर दिया है।

ऋषिभक्ति और आर्यत्व-आज के वासना प्रधान और अर्थ प्रधान युग में यत्र-तत्र कुछ बन्धुओं की ऋषि भक्ति तथा आर्यत्व का परिचय पाकर लेखक को अपार आनन्द की अनुभूति होती है। ऋषि जीवन पर कार्य करते हुए तीन वर्ष से भ्रमण तो करना ही पड़ रहा है। नित्यप्रति देशभर में ऋषि भक्तों को कुछ न कुछ कष्ट देता ही रहता हूँ। ऋषि जीवन विषयक शंकाओं के समाधान तथा गुत्थियों को सुलझाने में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है तो उसका एक मुख्य कारण कृपालु ऋषि भक्तों का स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा आर्यत्व है। सब सहयोगियों के नाम तो ग्रन्थ में ही पाठक पढेंगे परन्तु परोपकारिणी सभा के कार्यालय, श्री अनिल आर्य, वेदपथिक धर्मपाल जी मेरठ, आर्यसमाज बूढ़ाना द्वार मेरठ, प्रिय राहुल आर्य अकोला (सर्वाधिक योगदान रहा), श्री धमेन्द्र जिज्ञासु, श्री दयालमुनि टंकारा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अभी एक गुत्थी को सुलझाने के लिए श्री देवनारायण जी तथा अलीगढ़ आदि समाजों को एक विशेष कार्य सौंपा। डाक की गड़बड़ से वहाँ पत्र ही समय पर न पहुँचे तो श्री सत्येन्द्र सिंह जी ने कहा कि मैं श्री यशपाल जी मेरठ को लेकर जाता हूँ। सारी जानकारी लेते आयेंगे। आप ग्रन्थ लेखन में ही लगे रहिये। इतने में पत्र वहाँ पहुँच गये। अविलम्ब श्री मित्रसेन जी प्रधान अलीगढ़ समाज, मन्त्री जी तथा देवनारायण जी सबके चलभाष एक साथ आने लगे। प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध करवाई तथा और भी बहुत कुछ पता लगाने में ये भाई जुट गये हैं। इस ऋषि भक्ति और आर्यत्व का परिचय पाकर हम क्यों न इतरायें।

ठाकुर भूपालसिंह जी ने अन्तिम वेला में ऋषि जी की जो सेवा की उसका जो वर्णन पं. लेखराम जी, देवेन्द्र बाबू और स्वामी सत्यानन्द कर गये सो कर गये.. पं. लेखराम जी ने एक स्थान पर संकेत दिया है कि ठाकुर भूपालसिंह जी ठाकुर मुकन्दसिंह के भाई थे। जीवनी लेखकों ने प्राणवीर लेखराम के इस वाक्य को कोई महत्त्व ही नहीं दिया। क्या यह एक भयंकर भूल नहीं? क्या यह इतिहास की हत्या नहीं? ठाकुर मुकन्दसिंह जी की पोती को देखकर जब हम झूम उठे तो दीपक जी ने कहा, आप वेदी पर आकर इस परिवार की ऋषि भक्ति पर कुछ कहें। अभी तो इतना ही लिखना पर्याप्त है कि ठाकुर भूपाल सिंह जी श्री ठाकुर मुकन्द सिंह जी के चचेरे भाई थे। अधिक फिर ग्रन्थ में दिया जावेगा।

पं. लेखराम जी के ग्रन्थ में मास्टर मुरलीधर जी को गणित अध्यापक लिखा गया है। लक्ष्मण जी ने भी ऐसा ही लिखा है। पं. लेखराम जी विषयक मेरी पुस्तकों में उन्हें ड्राइंग टीचर लिखा है। कुछ मित्रों ने शंका भेज दी। समाधान किया कि गणित भी पढ़ाना पड़ा होगा। थे तो ड्राइंग मास्टर ही। और जाँच-पड़ताल करना आवश्यक जाना तो प्रमाण मिल गया कि वह

शेष पृष्ठ १७ पर........

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

वैदिक राज्यव्यवस्था की उपेक्षा करके हमने क्या खोया, क्या पाया?

-डॉ. सुरेन्द्रकुमार

अतीत से वर्तमान संवरता है और वर्तमान से भविष्य बनता है। आजाद भारत का संविधान और व्यवस्थातन्त्र बनाते समय हमने अपने वैदिक अतीत की उपेक्षा की और आयातित चिन्तन को आधार बनाया। राजनैतिक व्यवस्था के कुछ बिन्दुओं पर विवेचन करने पर यह निष्कर्ष सामने आया है कि हम न तो 'हम' ही रह सके और न 'वो' बन सके। हमारे वैयक्तिक और राष्ट्रीय चरित्र का निरन्तर पतन हुआ है और व्यावहारिक जटिलताएँ बढ़ी हैं।

लोकतन्त्र लाभकारी और लुभावना है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु लोकतन्त्र में रह गयी त्रुटियों ने लोकतन्त्र की महिमा को खण्डित कर दिया है। देश को संचालित करने का और उन्नत करने का दायित्व जिस वर्ग पर है उन राजनैतिक प्रतिनिधियों पर बौद्धिक योग्यता, मर्यादित चरित्र और यथायोग्य दण्ड के नियम और प्रतिबन्ध शिथिल एवं असफल हैं। वैदिक राजव्यवस्था में प्रत्येक वर्ग के लिए उक्त नियमों के यथायोग्य प्रावधान थे। बौद्धिक योग्यता का अर्जन, मर्यादित नियमों अर्थात् धर्म का पालन तथा न्याय का आचरण अनिवार्य प्रतिमान थे। वैदिक नीतिशास्त्रों में इस बात को बार-बार बल देकर कहा गया है- **''यथा राजा तथा प्रजा'', ''यद् राजा करोति तद् विट् करोति''** (मैत्रायणी संहिता १.१०.१३), दोनों का एक ही भाव है-'जो राजा करता है, वही प्रजा करती है, जैसा राजा होता है वसी ही प्रजा होती है, और होती रहेगी।

वर्तमान प्रगतिवादी और सर्वश्रेष्ठ कही जाने वाली आयातित लोकतान्त्रिक राज्यव्यवस्था में बौद्धिक योग्यता की विसंगतियों की चर्चा करते हैं। शासकों और राजनेताओं का विद्वान् होना तो दूर की बात है, वह अंगूठाछाप भी हो सकता है। मर्यादित होना जरूरी नहीं, हाँ, व्यसनी हो सकता है। विद्वान् होने की शर्त लगाना लोकतान्त्रिक मूल्यों में हस्तक्षेप हो जाता है और व्यसनी न होने की शर्त लगाना 'प्राइवेट लाइफ' में। वर्तमान शिक्षितों और चिन्तकों के कितने अद्भुत तर्क हैं और कितनी विलक्षण व्यवस्था है! कैसी विड़म्बना है कि वर्तमान राज्यव्यवस्था में यदि किसी को चपरासी होना है तो उसे आठवीं या दसवीं पास अवश्य होना चाहिए, और यदि राजा, राजनेता, मन्त्री, विधायक या सांसद होना है तो पहली पास करना भी आवश्यक नहीं। देश का प्रधानमन्त्री, प्रदेशों का मुख्यमन्त्री, अंगूठाछाप चल सकता है, चपरासी नहीं। यदि आपको स्कूटर, कार चलाने हैं तो आपको अपनी उस विषयक योग्यता की परीक्षा देकर पहले एक प्रमाण पत्र (लाइसेंस) प्राप्त करना होगा किन्तु एक विशाल देश या प्रदेश को चलाने वालों को किसी योग्यता-प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं। आज का प्रशासन और न्यायालय एक आम अनपढ़ नागरिक से भी यह अपेक्षा करता है कि उसे प्रत्येक कानून की जानकारी होनी चाहिए किन्तु कानून बनाने वाले राजनैतिक से यह अपेक्षा बिल्कुल नहीं की जाती कि वह जो कानून बना रहा है उसकी उसको जानकारी और समझ है या नहीं। आज के राजनैतिकों को यह पूरी छूट है कि वे निरक्षर, अयोग्य होते हुए भी देश को चलाने वाले कानून बना सकते हैं। यह बात अलग है कि वे उनके नाम से बनाये हुए लिखे कानूनों को पढ़ भी नहीं पाते। क्या ऐसी राज्यव्यवस्था को न्यायोचित, तर्कसंगत, जनहितकारी और राष्ट्रीयहितकारी माना जा सकता है? और क्या ऐसे नेतृत्व से कोई समाज और राष्ट्र उन्नत हो सकता है? यदि देश का राज्य और राजनीति बिना इनके चल सकती है, तो अन्य क्षेत्र भी चल सकते हैं। यदि अन्य क्षेत्र इनके बिना नहीं चल सकते हैं तो देश संचालन और विधि निर्माण जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य बिना विद्वत्ता और योग्यता के कैसे चल सकता है? इन विसंगतियों पर टिकी कोई शासन-पद्धति चिरायु नहीं हो सकती।

अयोग्य, अशिक्षित और अनधिकारी शासक के नेतृत्व में कोई भी समाज या राष्ट्र प्रसन्नतामय वातावरण में रहकर बौद्धिक उन्नति नहीं कर सकता अैर न न्याय प्राप्त कर सकता है। वहाँ निराशा, हताशा और आपाधापी का वातावरण उभरता जायेगा। बौद्धिक प्रतिभा को प्रतिष्ठा, महत्त्व और उपयुक्त स्थान न मिलने से बौद्धिक उन्नति अवरुद्ध होती जायेगी। यह हम भारत में ही पौराणिक काल में भुगत चुके हैं। वैदिक राजनीतिज्ञों का तो इस विषय में स्पष्ट मत है-

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।।

'जिस राष्ट्र में अपूज्यों-अयोग्यों का सम्मान और पूज्यों-योग्यों की उपेक्षा होती है वहाँ अन्याय के कारण तीन प्रकार की आपत्तियाँ उपस्थित हो जाती हैं-**१. दुर्भिक्ष**-खाद्य एवं भोग्य पदार्थों में अव्यवस्था या काला बाजारी, **२. मरणम्**-अराजकता, अपराध, मारकाट, **३. भयम्**-जनता का भय के वातावरण से त्रस्त रहकर विनष्ट होना। ऐसे वातावरण में यदि धन, बल और बुद्धि में किसी भी प्रकार की समृद्धि हो भी जायेगी, तो वह चिरस्थायी नहीं रह सकती। अराजकता उसको निगल जायेगी। उस अराजकता के तीन नाम है-अभाव, अराजकता और विनाश। इसलिए वैदिक राज्यव्यवस्था में राजा और राजनेताओं के लिए कुछ अनिवार्य नियम बनाये गये थे जिनमें पूर्णशिक्षित और धार्मिक होना परमावश्यक थे।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था ने धर्म को पूजा-पाठ मानकर तिरस्कृत करके स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी है। वैदिक मनीषियों का स्पष्ट मत है कि अविद्वान् और अधार्मिक शासक कभी राष्ट्र को श्रेष्ठ मार्ग पर नहीं ले जा सकता। उसके शासन में सुख और शान्ति का वातावरण नहीं बन सकता। इसलिए वैदिक राज्यव्यवस्था में विद्या के साथ धर्म को प्रत्येक कार्यकलाप का मूलाधार और कसौटी माना गया है। पहले यह स्पष्ट कर दूँ कि धर्म का अर्थ केवल पूजा-पाठ नहीं है, इसका अर्थ 'नैतिक-मर्यादित आचरण' और 'ईश्वरविश्वास' है। धर्म वह तत्त्व है जो जीवन में धारण करने योग्य है, और जिससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का कल्याण होता है। धर्म वह तत्त्व है जिसे मानवीय कर्त्तव्यों से पृथक् नहीं किया जा सकता। इसलिए वैदिक व्यवस्था में धर्म का ही एक नाम मानवता है। राजा और राजनीतिज्ञ क्योंकि जनता के नेता होते हैं, देश के कर्णधार होते हैं, अतः उनमें धर्म की प्रधानता अपेक्षित है। धर्मपालन में दोहरे मानदण्ड नहीं होते। वहाँ निजी जीवन में भी शुचिता आवश्यक हो जाती है और सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में भी।

वर्तमान व्यवस्था राजनैतिकों तथा अन्य नागरिकों को दोहरा जीवन जीने की छूट देती है। उनकी 'सोशल लाइफ' कुछ और, तो 'प्राइवेट लाइफ' कुछ और होती है। नयी व्यवस्था की भ्रान्ति है कि 'सोशल और ऑफिशियल लाइफ' यदि ठीक है तो उस पर 'प्राइवेट लाइफ' का कुछ फर्क नहीं पड़ता। किन्तु वह भूल जाती है कि व्यक्ति विचारों और संस्कारों से ही संचालित होता है। वह 'प्राइवेट लाइफ' एक दिन सामाजिक और कार्यालयीन जीवनपद्धति पर प्रभावी हो जायेगी। और तब दोनों मिलकर एक हो जायेंगी। निजी जीवन में आदर्शों और मर्यादाओं का पालन न करने वाले किसी व्यक्ति से यह आशा कैसे की जा सकती है कि वह सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में आदर्शवान् होगा? उसको देखकर जनता में भी आदर्श मूल्यों की आशा नहीं की जा सकती। यही कारण है कि आज के परिवेश में, आदर्श, नैतिक मूल्य, मर्यादाएँ, न्याय विलुप्त होते जा रहे हैं, और अधर्म, अपराध, पापाचार, भ्रष्टाचार, अन्याय बढ़ते जा रहे हैं। धार्मिकता अथवा नैतिकता के अभाव में भ्रष्टाचार रग-रग में समा रहा है। वह शिष्टाचार और सम्मान का रूप धारण करता जा रहा है। भ्रष्टाचार, अपराध और अपराधियों का राजनीतिकरण होता जा रहा है। ऐसे लोग घृणास्पद के स्थान पर महिमामण्डित और प्रभावमण्डित हो रहे हैं। ऐसे लोगों का गली, गाँव, शहर, समाज में वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। आम जनता में आतंक व्याप्त है। जो जितना बड़ा भ्रष्टाचारी, आतंकी, अपराधी है, उसकी चुनाव जीतने की उतनी ही अधिक गारंटी है। गैर-अपराधी दर-दर घूमकर वोट मांगने पर भी जीतें या न जीतें, किन्तु महा अपराधी जेल में ऐश करते हुए ही चुनाव जीत जाते हैं। यद्यपि चुनाव आयोग द्वारा कुछ अंकुश लगाते हुए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि प्रत्येक प्रत्याशी सम्पत्ति की घोषणा के साथ अपराधों/मुकद्दमों का विवरण भी प्रस्तुत करेगा, किन्तु अधिकाधिक आपराधिक मुकद्दमे तो मानो उनकी 'मैरिट लिस्ट' बन गये हैं। आज का समाज कितना असहाय और विवश है कि उसे क्रूरकर्मा आतंकवादियों को 'अतिवादी' जैसे दार्शनिकनुमा और महा अपराधियों को 'बाहुबली' जैसे मनोहर विशेषणों से पुकारना पड़ रहा है।

धनबली, पदबली और बाहुबली लोकतन्त्र को दोनों हाथों से लूट रहे हैं। लोकतन्त्र क्या है, उनका अभयारण्य बना हुआ है और वे उसमें स्वच्छन्दता से विचरते हैं। गाँव से लेकर देश को चलाने वाली लोकसभा तक उनका दबदबा है। प्रशासन, नियम, कानून उनके ठेंगे पर रहते हैं। लोकतन्त्र का असली 'लोक' दीन-हीन, असहाय है। नाम लोकतन्त्र का है किन्तु वस्तुतः उसकी बागडोर 'बलीतन्त्र' के हाथों में खेलती है। इसलिए आज लोकतन्त्र पर ही प्रश्नचिह्न लगने लगता है। ऐसे कुपोषित लोकतन्त्र से लम्बे जीवन की आशा कैसे की जा सकती है?

कुछ लोग कहते हैं कि संस्कारों की, आदर्शों की, मर्यादाओं की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमारा संविधान है, कानून है। उनके अनुसार लोग चलेंगे, व्यवस्थातन्त्र चलेगा, देश चलेगा, जो नहीं चलेगा वह दण्डित होगा। हम भूल जाते हैं कि 'कानून' तो एक जड़ तत्त्व है। संस्कारों, आदर्शों, मर्यादाओं के बिना वह निष्क्रिय है, असहाय है। संस्कारों और दृढ़ संकल्पों से ही उसमें चेतना आती है। जनचेतना के बिना कानून व्यर्थ है। धनबल, बाहुबल और पदबल के सामने वह 'बेचारा' है। केवल कानूनी व्यक्ति भी 'रोबोट मानव' के समान है जब तक कि उसमें संस्कारों और संकल्पों का स्फुरण न हो। हमने संस्कारों और संकल्पों को, जो वैदिक व्यवस्था में धर्म के अन्तर्गत समाहित थे, निरर्थक मान लिया है, यह नैतिक पतन का कारण है।

आइए, अब तुलना करते हैं लोकतन्त्र के शासक की और वैदिक व्यवस्था के शासक की। राजा या शासक कैसा होना चाहिए और उसे किन व्रतों अर्थात् कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए, इसका सुन्दर चित्रण और चित्र वैदिक राज्यव्यवस्था में देखा जा सकता है। मनुस्मृति में एक सारगर्भित श्लोक आता है-

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत्।।

(मनुस्मृति ९.३०३)

'राजा या शासक को इन्द्र, अर्क=सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्र, अग्नि और पृथिवी के स्वाभाविक कार्यों को कर्त्तव्यरूप में पालन करने का व्रत लेना चाहिए।' वे व्रत हैं **१. इन्द्रव्रत**-जिस प्रकार वर्षा का देवता (शक्ति) इन्द्र वर्षाकाल में भरपूर वर्षा

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

करके धन-धान्य से सम्पन्न करता है, उसी प्रकार राजा, प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करके उन्हें प्रसन्न रखे, यह राजा का इन्द्रव्रत है। **२. अर्कव्रत**-जिस प्रकार सूर्य बिना कष्ट पहुँचाये रस ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा-प्रजाओं से थोड़ा-थोड़ा कर ग्रहण करे। **३. वायुव्रत**-जिस प्रकार वायु प्राणियों में प्रविष्ट होकर सर्वत्र विचरण करता है, उसी प्रकार राजा दूतों के द्वारा प्रजाओं के सब दु:खों-सुखों को जाने। **४. यमव्रत**-जिस प्रकार मृत्यु समय आने पर सबको वश में करती है, उसी प्रकार अपने-पराये के पक्षपातरहित होकर न्याय करे और अपराधियों को अवश्य दण्डित करे। **५. वरुणव्रत**-जिस प्रकार जल अपनी तरंगों या भंवर से किसी को जकड़ लेता है, उसी प्रकार राजा अपराधियों और लोककण्टकों को कारावास या वश में रखे। **६. चन्द्रव्रत**-जैसे चन्द्र के माधुर्य को देखकर लोग प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार राजा ऐसा हो कि प्रजाएँ उसको देखकर हर्ष का अनुभव करें। **७. अग्निव्रत**-जिस प्रकार अग्नि अपवित्र वस्तुओं को भस्म कर देती है, उसी प्रकार राजा पापकर्मों और दुष्टों को भस्म करने वाला हो। **८. धराव्रत**-जिस प्रकार धरती प्राणियों को समान भाव से धारण करके समता से पालन करती है, उसी प्रकार राजा समानतापूर्ण व्यवहार रखते हुए प्रजा का पालन-पोषण करे। यह राजा की संक्षिप्त एवं आदर्श आचार संहिता थी।

आधुनिकमन्य लोग वर्तमान राज्यव्यवस्था में प्रचारित 'समाजवाद', 'समतावाद' आदि विचारधारा को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं जैसे वह वर्तमान राजनीति की अभूतपूर्व खोज हो, या अद्भुत विशेषता हो। पाठकों को जानना चाहिए कि वैदिक राज्यव्यवस्था में प्रजारंजन, प्रजाहित, प्रजारक्षण, प्रजापालन ही राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था और समता का व्यवहार उसका आदर्श था। राजा के कर्त्तव्यों में **'धराव्रत'** समता के व्यवहार का ही कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त, राज्याभिषेक के समय राजा सार्वजनिक रूप से समाज हित अर्थात् प्रजा हित की और समानता के व्यवहार की प्रतिज्ञाएँ भी करता था। वैदिक काल में राजा बनने के लिए राजसूय यज्ञ और सम्राट् अर्थात् चक्रवर्ती राजा बनने के लिए अश्वमेध यज्ञ करना पड़ता था। उस चक्रवर्ती सम्राट को भी ये प्रतिज्ञाएँ करनी होती थीं। वैदिककाल के विख्यात चक्रवर्ती सम्राट पृथु के वृतान्त में उपर्युक्त नियम का उल्लेख मिलता है। महाभारत (शान्ति. ४९, ९८-१२८) में आता है कि सम्राट् बनते समय अश्वमेध यज्ञ के अन्तर्गत ऋत्विज् ऋषियों ने सम्राट् पृथु से निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ करायी थीं-

१. मैं मनसा-वाचा-कर्मणा सत्यप्रतिज्ञा करता हूँ कि निर्धारित धर्म (राज्य के संविधान) का निर्भयतापूर्वक, शंकारहित होकर पालन करूँगा।

२. प्रिय-अप्रिय की भावना को छोड़कर सभी प्रजाजनों के साथ समानता का व्यवहार करूँगा।

३. जो कोई अपने धर्मों-कर्त्तव्यों से विचलित होगा उसको, काम, क्रोध, लोभ, मान-अहंकार की भावना को दूर रखकर, स्वीकृत धर्म (संविधान) के अनुसार दण्ड दूँगा।

४. प्रजा जन को 'भौम-ब्रह्म' मानकर उसका पालन-रक्षण करूँगा अर्थात् जिस प्रकार व्यक्ति ईश्वर के प्रति श्रद्धा, सम्मान, प्रेम भाव रखता है उसी प्रकार प्रजा को आदर, प्रेम दूँगा और उसका पालन करूँगा।

ध्यान दीजिए, वैदिक राजा के लिए प्रजा केवल 'पुत्रवत्' ही नहीं, 'ब्रह्मवत्' आदरणीय भी होती थी। इससे उदात्त आदर्श और कर्त्तव्य आज तक किसी भी राजनीति में स्थापित नहीं हुए हैं। आज का तन्त्र आन्तरिक आदर्शों की चर्चा नहीं करता क्योंकि उन आदर्शों को निभाना 'लोहे के चने चबाना' है। वैदिक राजा इन कठोर आदर्शों का पालन करते थे। उनके लिए राजगद्दी ठाठ-बाट का साधन और पीढ़ियों के लिए धनसंचय का माध्यम नहीं थी। उनका राजगद्दी के प्रति नहीं, कर्त्तव्य के प्रति प्रेम था। वे तानाशाह या लालफीताशाह की तरह मनमाना शासन नहीं करते थे अपितु प्रजा का पुत्रवत् पालन करते थे। अधिकांश राजा, राजा होने के साथ ऋषि थे और ऋषितुल्य तपस्वी, निर्लिप्त, अध्ययनपरायण और आध्यात्मिक जीवन जीते थे। इसी कारण उन्हें 'राजर्षि' कहा जाता था। आज की तरह जर्जरशरीरी होकर भी कुर्सी से चिपके रहकर मरना उनका लक्ष्य नहीं होता था, वानप्रस्थ काल आते ही पुत्र को राज्य सौंप राजा-रानी वन में चले जाते थे और तपस्या एवं साधनामय जीवन बिताते थे। मिथिला के राजर्षि जनक राजा होते हुए निर्लिप्त जीवन बिताते थे, वेद-वेदांगों के अध्ययन और ब्रह्मोपासना में लीन रहते थे। प्रजावत्सल और मर्यादापुरुषोत्तम राम प्रजा के हितसाधन में तत्पर रहते थे। इसी कारण इतिहास में उनके आदर्श राज्य को 'रामराज्य' के रूप में स्मरण किया जाता है। केकयराज अश्वपति ब्रह्मविद्या के विशेषज्ञ थे। छान्दोग्य उपनिषद् में आया है कि प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन और वुडिल नामक पांच ब्रह्मजिज्ञासु समृद्ध गृहस्थ उनके पास ब्रह्मविद्या पर विचार-विमर्श करने जाते हैं। सम्राट अश्वपति उनके रात्रि निवास और भोजन ग्रहण करने का अनुरोध करता है। वे इन बातों में इसलिए रुचि नहीं लेते कि भूल से राजा द्वारा अन्याय, अधर्म हो जाता है। ऐसे राजा का अन्न भी पापकारक होता है। उनके मनोभावों को भांपकर राजा अश्वपति गौरव के साथ घोषणा करता है कि मेरा अन्न खाने में कोई दोष नहीं है, क्योंकि-

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।

(छान्दो. ५.११.५)

'हे ब्रह्मवेत्ताओं! मेरे राज्य में कोई चोर-डाकू नहीं है, न कोई अदानी है, न शराबी है, न कोई यज्ञानुष्ठान से रहित है। मेरे राज्य में कोई परस्त्रीगामी पुरुष नहीं है, फिर परपुरुषगामी स्त्री

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

कैसे होगी?' इसलिए आप नि:शंक होकर भोजन ग्रहण कीजिए। मध्यकाल में सम्राट अशोक भी एक उदाहरण पुरुष हुए हैं। वे अपने जीवन के उत्तरवर्ती काल में राजा होते हुए भी एक भिक्षु का जीवन जीते थे। राज्य के सुख-ऐश्वर्य का उपभोग नहीं करते थे। वेशपरिवर्तन करके प्रजा में स्वयं घूम-घूमकर उनके दु:खों-असुविधाओं की जानकारी लेकर उन्हें दूर करते थे।

आज के लोग इन आदर्शों पर विश्वास नहीं कर पाते। वे इन्हें अतिशयोक्ति और गर्वोक्ति कहकर इनकी सत्यता को झुठलाना चाहते हैं। हमारे संस्कार इतने संकीर्ण, स्वार्थमय, तामसिक और राजसिक हो चुके हैं कि हमें वे उदात्त आदर्श संभव नहीं लगते। जैसे किसी विलासिता में आकण्ठ डूबे व्यक्ति को ब्रह्मचर्य जीवन जीना, मद्यपायी को मद्यरहित जीवन जीना, भ्रष्टाचारी को रिश्वतरहित रहना, स्वेच्छाचारी को पतिव्रत और पत्नीव्रत निभाना संभव नहीं लगते, उसी प्रकार आज के उदात्त मूल्यों से रहित परिवेश में जीने वालों को प्राचीन आदर्श संभव नहीं लगते। यही कारण है कि आज विश्व का कोई शासक सम्राट अश्वपति जैसी महती घोषणा नहीं कर सकता। कोई राजनीतिज्ञ राम के 'प्राण जाए पर वचन न जाए' के आदर्श को सोच भी नहीं सकता। किन्तु, कुछ महान् आत्माएँ अर्वाचीन युग में भी भारत में पैदा होती रही हैं जिन्होंने यहाँ की आदर्श-परम्परा को जीवित रखा और संभव सिद्ध किया है। वीर शिरोमणि छत्रपति शिवाजी के समक्ष जब सुन्दरी मुस्लिम वधू को महल में रखने के लिए लाया गया तो उन्होंने उसको भोग्या के रूप में नहीं, माता के रूप में देखा और आदेश दिया कि इसे सम्मानपूर्वक इसके घर पहुँचा दिया जाए। दूसरी ओर उसी काल में मुसलमान बादशाह चुन-चुनकर हिन्दू सुन्दरियों को बलात् महलों में रखते थे और उनकी इज्जत लूटते थे। हीन संस्कारी लोगों को कभी आर्य आदर्श संभव कैसे लग सकते हैं? उनके लिए तो उदात्त संस्कार, उदात्त आत्मा और उदात्त आचरण चाहिए। यही सर्वतोमुखी उदात्तता वैदिक संस्कृति-सभ्यता की विशेषता थी। और, राजा से उसी उदात्त आचरण की अपेक्षा की जाती थी।

वैदिक राज्यव्यवस्था में प्रजातन्त्र शासन भी था (जैसे अम्बष्ठ गणतन्त्र), किन्तु अधिकार तन्त्र नहीं था, वह लोकतन्त्र और राजतन्त्र का मध्यमार्गी रूप था। राजा के पुत्र का जब युवराज अथवा राजा के पद पर अभिषेक होना होता था, उससे पूर्व राजसभा से, पुरोहितों से और अधीन राजाओं से, प्रजा प्रतिनिधियों से अनुमति लेनी आवश्यक थी। सहमति-अनुमति के बिना राजतिलक नहीं हो सकता था। वैदिक राजतन्त्र में चुने हुए प्रतिनिधि, जिसमें प्रजा के भी प्रतिनिधि होते थे, राजा का चयन करते थे, जबकि लोकतन्त्र में भी जनता के चुने हुए प्रतिनिधि देश के शासक (प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति) और प्रदेश के शासक (मुख्यमन्त्री) का चयन करते हैं। अन्तर यह है कि कर्त्तव्यविमुख राजा को 'राजकर्त्तार:' और प्रजा कभी भी पदच्युत कर सकते थे जबकि लोकतन्त्र में उसे हटाने के लिए पांच वर्ष पश्चात् आने वाले चुनाव की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। तब तक वे कितना ही धनसंचय करें, कितना ही शासकीय धन का दुरूपयोग करें, कितने ही ठाठ-बाट करें, जनता का कोई वश नहीं चलता।

अब बात करते हैं न्याय व्यवस्था और दण्डव्यवस्था की। वैदिक कालीन न्यायव्यवस्था अधिक न्यायपूर्ण, पक्षपात रहित, पारदर्शी, जटिलता रहित, व्यावहारिक, श्रेष्ठ प्रभावकारी, शीघ्रकारी, तर्कसंगत और मनोवैज्ञानिक थी। वह यथायोग्य दण्डव्यवस्था थी। आज की व्यवस्था 'यथा-कानून' दण्डव्यवस्था है। वैदिक न्याय या दण्डव्यवस्था के तीन आधारभूत तत्त्व थे-**१.** बौद्धिक स्तर या शिक्षा स्तर, **२.** सामाजिक स्तर या पद, **३.** अपराध की प्रकृति और प्रभाव। यदि व्यक्ति उच्च शिक्षित है तो वह निश्चित रूप से अपराध के गुण-दोष और प्रभाव के ज्ञान में अधिक विवेकशील है। यदि कोई उच्च पद पर है और उच्च वर्ण एवं उच्च सामाजिक स्तर वाला है तो उसके अपराध का दुष्प्रभाव भी समाज पर उतना ही अधिक पड़ेगा। इसी प्रकार अपराध की गम्भीरता और उससे समाज या राष्ट्र पर पड़ने वाला दुष्प्रभाव है। ये जहाँ अधिक हैं वहा दण्ड भी अधिक है, जहाँ न्यून है, वहाँ दण्ड भी न्यून है। दण्ड व्यवस्था का उद्देश्य होता है-बुराइयों को रोकना, बुरों को सुधारना, समाज में सुख, शान्ति, न्याय और व्यवस्था बनाये रखना। यह न्यायोचित ही है कि इन बिन्दुओं पर जिसका जितना दुष्प्रभाव पड़ता है उतना ही उसको हानिकारक माना जाना चाहिए और उसको तद्नुसार दण्ड देना ही न्यायपूर्ण दण्ड व्यवस्था कही जानी चाहिए।

वैदिककालीन समाज में वर्ण-व्यवस्था थी, जो गुण, कर्म, योग्यता वाले व्यक्ति ब्राह्मण कहलाते थे, फिर क्रमश: क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। इसी गुण-कर्म-योग्यता के अनुसार समाज में इनका अधिक सम्मान और प्रभाव था। राजा राष्ट्रप्रमुख था अत: उसका सम्मान और प्रभाव सर्वाधिक था। यदि ये अपराध करते हैं तो निर्विवाद रूप में उस अपराध का बुरा प्रभाव भी उच्चता के अनुसार अधिक और व्यापक होगा। उससे उतना ही अधिक सामाजिक व्यवस्था को आघात पहुँचेगा। अत: यह न्यायोचित है कि उसे उतना ही अधिक दण्ड दिया जाये। कम दण्ड उस पर प्रभावकारी सिद्ध नहीं होगा। इसी न्याय सिद्धान्त के अनुसार मनुस्मृति में दण्ड निर्णय करते हुए कहा गया है कि एक प्रकार के अपराध में जहां शूद्र को आठ गुणा दण्ड मिलता है तो वहाँ वैश्य को सोलह गुणा (दुगुना), क्षत्रिय को बत्तीस गुणा (तिगुना), ब्राह्मण को चौंसठ गुणा (आठ गुणा) अथवा सौ गुणा (दस गुणा) अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा (सोलह गुणा) और राज को एक हजार गुणा दण्ड मिलना चाहिए (८.३३५-३४७)। यह भी निर्देश है कि अपराध करने पर राजा, आचार्य,

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

माता, पिता, मित्र, पुरोहित कोई भी क्षम्य नहीं होना चाहिए और यदि कोई शारीरिक दण्ड के बदले धन देकर छूटना चाहे तो उसको नहीं छोड़ना चाहिए। कितनी न्यायपूर्ण और मनोवैज्ञानिक व्यवस्था है।

वैदिक कालीन राज्यव्यवस्था में राजा कुल परम्परागत होने लगा था, यद्यपि ऐसा अपरिहार्य नहीं था। ऐतरेय ब्राह्मण (९.२३) में उल्लेख है कि राजपरिवार का न होते हुए भी जनंतपुत्र अत्याति चक्रवर्ती राजा बना था और उस समय सात्यहव्य वासिष्ठ ने उसका अश्वमेध यज्ञ कराया था। कुल परम्परागत होते हुए भी राजा स्वेच्छाचारी और निरंकुश नहीं था। वह न तो यूरोपीय व्यवस्था का 'किंग' था और न इस्लामी व्यवस्था का 'बादशाह'। वह राज्य का मुखिया अथवा सभाध्यक्ष होता था। उसे राजसभा, धर्मसभा और न्यायसभा के अधीन रहकर राज्य संचालन करना होता था। अपने कर्त्तव्यों का ठीक से निर्वहन न कर सकने वाले राजा को या तो राजसभा पदभ्रष्ट कर देती थी, या प्रजा के दबाव में स्वयं पद छोड़ना पड़ जाता था। सम्राट् सागर के अन्यायी पुत्र असमंजस को राज्याधिकार से वंचित होकर राज्य से निष्कासित होने का दण्ड भोगना पड़ा था। सत्यव्रत त्रिशंकु को दुर्व्यवहारी होने के कारण राज्यभ्रष्ट होना पड़ा था। ये दोनों अयोध्या के राजा थे। हस्तिनापुर के राजाओं में पारिक्षित् जनमेजय (द्वितीय) को ब्रह्महत्या करने या कराने के फलस्वरूप पदच्युत होना पड़ा था। वह प्रायश्चित करने के उपरान्त पुन: राजगद्दी पर बैठा। अभिमन्यु के पौत्र जनमेजय (तृतीय) के साथ भी एक बार ऐसा ही हुआ। आर्यों के धार्मिक ग्रन्थ यजुर्वेद में विकृतियों का पक्ष लेने के कारण जनता में उसके प्रति इतना आक्रोश उमड़ा कि उसे भागर वन में शरण लेनी पड़ी। किसी प्रकार जब विवाद शान्त हुआ तो महर्षि याज्ञवल्क्य के आश्रय से उसका पुन: अश्वमेध-अनुष्ठान हुआ और राजसिंहासन पर बैठा। देवों के राजा इन्द्र ने निर्दोष त्रिशिरा का वध कर दिया। प्रजा-विद्रोह के कारण उसे भागकर वन में छिपना पड़ा था। प्रायश्चित करने पर पुन: राज्यासीन हुआ। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें राजा को किसी अपराध के कारण दण्डित अथवा पदभ्रष्ट होना पड़ा था। इस प्रकार राजा, राजकुमार आदि को भी न्यायसभा या प्रजा दण्ड देती थी।

आज की व्यवस्था में मूल विरोध तो यही है कि सम्मान व्यवस्था तो उच्च, ऐश्वर्यपूर्ण व सुविधापूर्ण है और दण्डव्यवस्था समान है, क्योंकि जो उच्च व्यक्ति योग्यता का या पद का सुविधा-फल तो सामान्य व्यक्ति से अधिक प्राप्त करता है किन्तु दण्ड के समय अयोग्यता, अपराध की फल प्राप्ति का जब अवसर आता है तो वह सामान्य व्यक्ति के समान मान लिया जाता है। जो व्यक्ति ऊँचे पद पर है, जिसका सामाजिक और बौद्धिक स्तर अधिक है, उसका उतना अधिक सम्मान, प्रभाव व परिचय है। वह उतना ही अधिक सुख-सुविधा का उपभोग करता है। स्पष्ट है कि यदि वह अपराध या भूल करेगा तो उसका समाज पर दुष्प्रभाव भी उतना ही अधिक और गम्भीर होगा। जो मजदूर जैसा सामान्य व्यक्ति है उसका बौद्धिक स्तर, सम्मान, प्रभाव व परिचय भी सामान्य होता है। उसके अपराध का समाज पर नगण्य प्रभाव होगा। वस्तुत: न्याय-विरोध तो यह है कि उनका सुख-सुविधा-सम्मान स्तर अधिक है और दण्डस्तर एक जैसा है। अपितु पक्षपातपूर्ण ढंग से पृथक् है। सामान्य व्यक्ति को जेल में सामान्य सुविधाएँ मिलती हैं जबकि विशेष को 'बी' या 'ए' श्रेणी की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यह दण्ड व्यवस्था विपरीत और अमनोवैज्ञानिक है। समाज में हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि राजन्य और उच्चवर्ग का समाज के निम्न वर्ग पर जितना मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है उसकी तुलना में निम्न वर्ग पर सामान्य प्रभाव पड़ता है और उच्च वर्ग पर तो पड़ता ही नहीं। अत: उच्च और निम्न को एक दण्ड स्तर पर रखना न्याय के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता।

इसे यथायोग्य दण्ड व्यवस्था भी नहीं माना जा सकता। एक उदाहरण से इसे समझा जा सकता है-खेत चर जाने के अपराध में मेमने, भैंसे, हाथी को एक-एक डंडा लगा। इसका यह प्रभाव पड़ेगा कि बेचारा मेमना तो पीड़ा से मिमियाने लगेगा, भैंसे पर सामान्य प्रतिक्रिया होगी। हाथी को डण्डे की अनुभूति ही नहीं होगी। यह यथायोग्य दण्ड नहीं हुआ। यह कहना भी भ्रान्ति है कि यह समान दण्ड हुआ, क्योंकि समानता भी वस्तु सापेक्ष होती है। यथायोग्य और समान दण्ड तो लोक व्यवहार में प्रचलित है। वहाँ मेमने को डंडे से, भैंसे को लाठी से, हाथी को अंकुश व पाश से और शेर को हंटर और पिंजरे से वश में किया जाता है। एक और उदाहरण आर्थिक दण्ड का लीजिए-एक अत्यन्त निर्धन व्यक्ति एक हजार रुपयों के आर्थिक दण्ड को भूखा रहकर या कर्ज लेकर चुका पायेगा, मध्यवर्गीय थोड़ा कष्ट अनुभव करके चुका देगा, और समृद्ध-सम्पन्न उसी दण्ड को जूती की नोंक पर रखकर देगा। इसे यथायोग्य और समान दण्ड तो क्या, दण्ड भी नहीं कहा जा सकता।

इसी अमनोवैज्ञानिक और अफलकारी दण्ड व्यवस्था का दुष्परिणाम है कि दण्ड की पतली रस्सी में मेमने जैसे गरीब तो फंस जाते हैं और धन-पद-सत्ता-सम्पन्न भैंसे, हाथी के सदृश शक्तिशाली लोग उस रस्सी में या तो फंसते ही नहीं या तोड़कर निकल भागते हैं। और 'शेर' तो उल्टा गुर्राते हैं। आंकड़े इकट्ठे करके देख लीजिए, स्वतन्त्रता के बाद कितने निर्धन और निर्बल लोगों को सजा हुई है तथा कितने धन-पद-सत्ता बाहु-बली लोगों को। आर्थिक अपराधों में तो समृद्धजन आर्थिक दण्ड भरते रहते हैं और अपराध करते रहते हैं। वैदिक दण्ड व्यवस्था में ऐसा असन्तुलन और असामर्थ्य नहीं है।

आज अन्याय का दण्ड वादी-प्रतिवादी दोनों को भुगतना पड़ता है। उनका धन, श्रम, समय व्यर्थ जाता है। वैदिक व्यवस्था

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

में अन्याय का जिम्मेदार न्यायाधीश और राजा को माना जाता था, और उन्हें उसका दण्ड भुगतना पड़ता था। इसलिए वे अन्याय नहीं करते थे। पूर्व पृष्ठों में राजाओं-राजकुमारों को प्राप्त दण्ड के कुछ उदाहरण दिये जा चुके हैं। यदि वादी मिथ्या अभियोग प्रस्तुत करता था तो वह भी दण्डनीय होता था। न्यायपूर्ण, पक्षपातरहित, यथायोग्य, शीघ्रकारी, प्रभावकारी, कठोर और मनोवैज्ञानिक दण्ड व्यवस्था का सुपरिणाम यह था कि अपराध नगण्य होते थे। न्यायव्यवस्था की एक उज्ज्वल झांकी देखने योग्य है। वाल्मीकिकृत रामायण में आता है-

''**राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन परस्परम्।**'' (वा. रामायण ६.१२८.१००)

''**दृश्यते न च कार्यार्थी रामे राज्यं प्रशासति।**'' (वही, ७.४९.१०)

'राम के आदर्श चरित्र, त्वरित एवं कठोर न्याय को देखते हुए लोग एक-दूसरे के प्रति अपराध ही नहीं करते थे। इस कारण मुकद्दमे भी नहीं होते थे और परिणामस्वरूप राम के शासन में न्यायालय खाली पड़े रहते थे।.....' और आज, न्यायालयों में रोज मेले-से लगते रहते हैं। तब न कोई फीस थी, न स्टाम्प पेपर थे, न वकीलों का झमेला था, न जटिल तकनीकी प्रक्रिया थी और न तकनीकी प्रक्रिया न्याय को अन्याय बनाती थी। विशेष और सामान्य सभी प्रजाजन समान रूप से सीधे और त्वरित न्याय प्राप्त कर सकते थे।

सामान्य जन की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति होती है कि वह राजन्य तथा उच्चवर्ग का अनुकरण करने में गौरव का अनुभव करता है और उस अनुकरण को शीघ्र ग्रहण करता है। वर्तमान राजनीति का जो विद्रूप स्वरूप है, उसका कलुषित चित्र जन सामान्य के सामने है। आजादी के पैंसठ वर्षों में ही व्यवस्था रूपी चित्र विद्रूप हो चला है, अवश्य कलाकार या कला सामग्री में कहीं-न-कहीं कोई कमी रह गयी है।

प्रश्न उठता है कि जब भारत के अतीत के खजाने में एक परखी हुई, उपयोगी और न्यायोचित स्वर्णमय वैदिक राज्यव्यवस्था थी, तो उसकी उपेक्षा क्यों की गयी? वस्तुतः यह आत्महीनता बोध का परिणाम और सांस्कारिक पराधीनता का प्रभाव है। राज्यव्यवस्था निर्माताओं ने दुनिया भर के सुविधाओं को उलटा-पलटा, वे अपने वैदिक विधि शास्त्रों को क्यों भुला गये? आज नहीं तो कल इस बिन्दु पर विचार करना ही होगा कि वैदिक राज्य की उपेक्षा करके हमने क्या खोया, और क्या पाया?

सम्पर्क-४२९/७, गुड़गाँव, हरियाणा।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अतः सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अतः लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हो। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

कुछ तड़प-कुछ झड़प, पृष्ठ-११ का शेष................

गणित भी पढ़ाते रहे। पं. लेखराम जी के वह भक्त थे। पण्डित जी का, लक्ष्मण जी का लेख सर्वथा दोष रहित है। आगे के लेखक सर सैय्यद व मैक्समूलर तथा रोमाँ-रोलाँ के स्कॉलर हैं। उन्होंने अपने समय के एक सिरमौर नेता, विद्वान्, साहित्यकार शास्त्रार्थ महारथी मुरलीधर का नाम ही ऋषि जीवन से निकाल दिया। वह प्रान्तीय स्तर का नेता मन्दिर में झाड़ू भी लगाया करता था। मास्टर आत्माराम सा रत्न इन्हीं की देन था। प्रिंसिपल लाला देवीचन्द जी को समाज सेवा के पाठ आप ही नहीं पढ़ाये। आर्य नेता श्री पं. उमराव जी भी एक प्रकार से आपकी देन थे। वैसे आप उनके शिष्य थे। हमने पूज्य मुरलीधर जी को ऋषि-जीवन में उनका उचित स्थान दिया है।

-वेद सदन, अबोहर।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एक मात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ- प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***- आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***- अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्ण रूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***- गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***- वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***- इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोध कर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***- योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों से भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युत पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्ष गांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाके फोड़कर जलाते हैं असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थिति होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

अतिथि यज्ञ के होता
(१ से १५ जून २०१३ तक)

१. उर्मिला उपाध्याय, अजमेर, २. कमला पांडव, पंजाब, ३. एम.एल. गोयल, अजमेर, ४. इन्द्रजित् देव, हरियाणा, ५. पी.सी. गुप्ता चेरिटेबल ट्रस्ट, गुड़गाँव, ६. भागवत सिंह चौहान, अजमेर, ७. रमेश मुनि, अजमेर, ८. मूलसिंह, जालौर, ९. ओमप्रकाश, श्रीगंगानगर, १०. विजयसिंह गहलोत, अजमेर, ११. देवमुनि, अजमेर, १२. जेठसिंह, बीकानेर, १३. विष्णुगोपाल सोमानी, अजमेर, १४. मुरलीधर बालमुकन्द छापरवाल, राजगढ़, अजमेर, १५. सौरभ वर्मा, भीलवाड़ा, १६. लक्ष्मी नारायण गुप्ता, श्री गंगानगर, १७. मुमुक्षु मुनि, अजमेर, १८. माया भार्गव, अजमेर, १९. जी.के. शर्मा, किशनगढ़, २०. कुमुदिनी आर्या, अजमेर, २१. ऊषा बंसल, अजमेर, २२. पियूष रावत, इन्दौर, २३. दिलीप सोनी, केकड़ी, २४. अनिल सिंह आर्य, बस्ती, २५. बलवन्त सिंह आर्य, बीकानेर, २६. स्वास्तिकम चेरिटेबल ट्रस्ट, महाराष्ट्र।

गौभक्तों से निवेदन

ऋषि उद्यान में संचालित गौशाला जो परमार्थ हेतु संचालित है। गौशाला में उत्पादित गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगत अतिथियों को निःशुल्क वितरित किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौओं को उत्तम चारा मिले इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें, उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चेक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएंगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता
(१ से १५ जून २०१३ तक)

१. विनोद गुप्ता, पूणे, २. बिरदीचन्द गुप्त, जयपुर, ३. कल्याण राय शर्मा, अजमेर, ४. राजेश त्यागी, अजमेर, ५. डॉ. हरिदत्त द्विवेदी, फर्रुखाबाद, ६. उमेशचन्द त्यागी, अजमेर, ७. आर्यसमाज राउरकेला, ओडिशा, ८. त्रियुगी नारायण पाठक, गोरखपुर, उ.प्र., ९. सुन्दर, अजमेर, १०. प्रह्लाद सिंह राजपूत, इन्दौर ११. मेहरबान सिंह, इन्दौर, १२. राजकुमार सिंह, इन्दौर, १३. सन्तोष वर्मन, अजमेर, १४. अनिरुद्ध वर्मा, अजमेर, १५. गणपत सिंह शेखावत, अजमेर, १६. पुष्पा, अजमेर, १७. सरिता मिश्रा, अजमेर, १८. लोकेश शर्मा, जयपुर, १९. एस.डी. बाहेती, अजमेर, २०. साकराम, किशनगढ़, अजमेर, २१. स्व. किशन मन्त्री, अजमेर, २२. लक्ष्मी नारायण गुप्ता, श्रीगंगानगर, २३. मुमुक्षु मुनि, अजमेर, २४. मधुसुदन दिक्षिका तोषनीवाल, अजमेर, २५. उर्मिला उपाध्याय, अजमेर, २६. राजपुताना म्यूजिक हाउस, अजमेर, २७. कर्नल गोविन्द सिंह, अजमेर, २८. अखिल, फरीदाबाद, हरियाणा, २९. कन्हैयालाल खाती, अजमेर, ३०. राधेश्याम, अजमेर, ३१. जयचन्द्र आर्य, मेरठ, ३२. अंगूरी देवी, अलवर।

-परोपकारिणी सभा, अजमेर।

धनराशि भेजने हेतु सूचना

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उस पर **'मन्त्री परोपकारिणी सभा'** अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर

१. बैंक खाता संख्या - 091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावरहाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक खाता संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

एक सच्चा श्राद्ध

-रीतिका शैलेश नवाल

आज की व्यस्त जीवन शैली में बुजुर्ग व्यक्तियों के लिये युवा पीढ़ी के पास समय का अभाव देखा जाने लगा है, वृद्ध माता-पिता की जिन्दगी घर की चार-दिवारी तक ही सीमित रह गई है, कभी किसी ने उनके मन को टटोलकर यह जानने की चेष्टा नहीं की, कि उनकी स्वयं की भी कोई इच्छा है। लोग यह भूल जाते हैं कि इच्छाएँ व स्वप्न उम्र के मोहताज नहीं होते। जिस प्रकार माता-पिता अपने बच्चों की महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करते हैं, उसी प्रकार बच्चों का भी यह फर्ज बनता है कि वृद्धावस्था में अपने माता-पिता की इच्छाओं को पूरा करें। ऐसा ही कुछ अविस्मरणीय अनुभव हमें हमारे दादा जी के ८४ वें जन्मदिवस पर हुआ, जिसे हम शब्दों में समेटने की चेष्टा कर रहे हैं।

हमारे दादा जी की पिछले ३-४ सालों से यह इच्छा थी कि वह घर से बाहर की दुनिया का अनुभव करें। इस इच्छा की पूर्ति के लिए कई बार यात्रा के कार्यक्रम बने। उनकी हवाई सफ़र की इच्छा के लिए पापा ने उनका पासपोर्ट बनवाया व भाई के पास हांगकांग जाने की योजना बनाई। परन्तु उनका स्वास्थ्य नरम होने के कारण यह केवल स्वप्न ही रह गया। स्वास्थ्य का उतार-चढ़ाव कुछ ऐसा हुआ कि दादा जी व्हीलचेयर पर निर्भर हो गए। लेकिन उनके स्वास्थ्य की इस कमजोरी में भी उनका मनोबल नहीं गिरा और इसी मनोबल ने हमारे पापा को बहुत प्रेरित किया। पापा ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह उनके सपनों को पंख जरूर देंगे। दादा जी के ८४ वें जन्म दिवस पर पापा ने मुम्बई व डहाणु में एक छोटा सा समारोह आयोजित किया।

इस उत्सव में चार चाँद लगाने के लिए मम्मी-पापा ने इस यात्रा में बुआ जी को भी शामिल कर लिया। सुशील भैया, श्रुति भाभी व उनकी डेढ़ वर्षीय सुपुत्री यशवी को भी हांगकांग से विशेषरूप से बुलाया। आशा दीदी व संकेत जीजा जी ने दादा जी को अपने नए घर में आमन्त्रित किया व हवाईअड्डे से उन्हें अपने घर तक लाने की सारी व्यवस्था की।

दादा जी की यात्रा का पहला चरण जयपुर-मुम्बई के हवाई सफर से हुआ। इस सफर में प्राप्त हुए आनन्द को दादा जी ने अपने शब्दों में कुछ ऐसे व्यक्त किया-''क्या मैं इनका जवांई लगता हूँ, जो यह मेरी इतनी खातिरदारी कर रहे हैं''। हम सब उनके इस सफर से पहले उनके स्वास्थ्य को लेकर थोड़ा चिन्तित थे, पर पापा ने इससे पहले उनकी पूरी चिकित्सकीय जांच करवायी व हवाई अड्डे पर चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध पहले से करवा दिया ताकि उनकी यात्रा में कोई असुविधा न हो व यात्रा आनन्दपूर्वक कर सकें।

दादा जी ने पहला दिवस अपनी पोती के नए घर पर बिताया। २४ वें माले के घर के बाहर के नजारे, गगनछूती इमारतें तथा मुम्बई की भीड़-भाड़ को लेकर उन्होंने अपनी भावनाएँ व्यक्त की। इसके बाद उन्होंने डहाणु की तरफ प्रस्थान किया। डहाणु पहुँच कर अगले दिवस भैया-भाभी की ५ वीं विवाह वर्षगांठ को सब परिवार ने मिलकर मनाया व इस शुभ अवसर पर भैया-भाभी को दादा जी के अनमोल आशीर्वाद का उपहार भी प्राप्त हुआ।

३० अप्रैल २०१३ को दादा जी के जन्मदिवस की शुरुआत उनके इच्छानुसार यज्ञ से की गई। इसके बाद दादा जी ने सबको वैदिक संस्कारों के बारे में जागरुक किया। उनके विचार, जागरुकता तथा टिप्पणियों से हम सब तो प्रभावित हुए ही साथ में घर के कर्मचारी भी बहुत प्रभावित हुए। ८४ वर्ष की उम्र में भी उनमें मानसिक रूप से जो विचारों की स्पष्टता है, वो हम सभी को प्रेरित करती है।

प्राकृतिक गोद में घुमाने के लिए हम सब लोग दादा जी को व्हीलचेयर पर रिलायन्स थर्मल पावर प्लांट ले गए चीकू की वाडीया, नारियल के बाग, कमल के तालाब देखकर उन्होंने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। परिवार की चार पीढ़ियाँ, जो कि ८४ वर्ष के दादा जी से लेकर डेढ़ वर्ष की उनकी पड़पोती यशवी तक को साथ में समय व्यतीत करते देखना व अनुभव करना अपने आप में बहुत रोचक था। शाम होते डहाणु-बोर्डी समुद्रतट पर ४० साल बाद समुद्र को देखकर उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। जैसे उनकी डेढ़ वर्ष की पड़पोती समुद्र की लहरों के साथ खेल रही थी कुछ इसी तरह दादा जी भी लहरों का आनन्द ले रहे थे। उनके चेहरे की चमक देखकर यह मालूम होता था कि उनकी कोई पुरानी ख्वाहिश पूरी हो गई हो। उनके जन्मदिवस की शाम पर छोटे से भोज का भी आयोजन किया गया जिसमें उन्होंने हम सबको बेहतर जीवन एवं अच्छे सामाजिक कार्य करने के लिए प्रेरित किया।

दादा जी की यात्रा का आखरी चरण डहाणु-अजमेर रेल यात्रा से हुआ। यह रेल यात्रा भी उनके लिए अलग अनुभव ही थी इस यात्रा में जिस तरह से पापा ने उनकी हर छोटी-बड़ी जरूरतों का ध्यान रखा वह देखकर हम सब आश्चर्य चकित रह गए। एक वृद्ध व्यक्ति को भी एक नन्हें बच्चे की तरह ही सुरक्षा व सावधानी चाहिए। आचार्य सत्यजित् जी ने जिस प्रकार से उनके स्वामी जी की सेवा की है, उनके संस्मरणों को सुनने के बाद काफी लोग प्रभावित हुए हैं, जिनमें से एक हमारे पापा भी हैं। पापा के इस सेवाभाव को देखकर हम सब काफी प्रभावित हुए और यह ८४ वाँ जन्मदिवस हमारे लिए यादगार व प्रेरणादायी हो गया।

-(आई.ए.एस.) असिस्टेन्ट कलेक्टर
डहाणु, ठाणे, मुम्बई।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

वैचारिक क्रान्ति हेतु सत्यार्थप्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र प्रचार-प्रसार की भव्य योजना

विचार किसी भी देश, समाज व जाति की अमूल्य निधि (सम्पत्ति) है। जिसके पास में ठोस श्रेष्ठ विचार नहीं या फिर विचार को फैलाने के साधन नहीं हैं या फिर जो व्यक्ति, समाज व राष्ट्र अपने विचारों की अवहेलना करते रहते हैं, उनका अस्तित्त्व भी एक दिन समाप्त प्रायः हो जाता है। आज हर सम्प्रदाय, समाज, समूह व देश अपने विचारों का प्रचार-प्रसार बड़ी प्रबलता से हर क्षेत्र में व हर साधन से कर रहे हैं, लेकिन काफी समय से आर्यसमाज में वैचारिक शिथिलता देखी जा रही है। इस शिथिलता को दूर करने का मात्र एक ही उपाय है कि हम सभी आर्य जन ऋषि दयानन्द सरस्वती कृत **अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का प्रचार नये शिक्षित लोगों में करें।** इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर सभा के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला २०१४ दिल्ली में प्रचार-प्रसार की योजना तैयार की गयी है।

सत्यार्थप्रकाश ही क्यों?-१. यदि कोई व्यक्ति, समाज, समूह, संस्था या राष्ट्र एक ग्रन्थ (पुस्तक) पढ़कर विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो यह सत्यार्थप्रकाश से ही सम्भव है। **२.** आज के दूषित वातावरण में वैदिक वाङ्मय को ठीक-ठीक जानने हेतु, पढ़ने-पढ़ाने हेतु प्रथम सत्यार्थप्रकाश और महर्षि के अन्य ग्रन्थों का पढ़ना-जानना अत्यन्त आवश्यक है। **३.** दर्शनशास्त्र, इतिहास, भारतीय परम्परा, कर्त्तव्य, धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य तथा मानवता आदि क्या हैं? यह सारी जानकारी सत्यार्थप्रकाश से प्राप्त होती है व होगी। **४.** पाखण्ड, मक्कारी, कुरीतियों व बुराइयों का नाश भी सत्यार्थप्रकाश से सम्भव है। **५.** सत्यार्थप्रकाश व ऋषि के अन्य ग्रन्थों की उपस्थिति में कोई विधर्मी अपनी शेखी नहीं मार सकता तथा किसी भी हिन्दू को बहकाकर विधर्मी नहीं बना सकता। **६.** सत्यार्थप्रकाश के प्रभाव ने न जाने कितनों का जीवन ही बदल डाला। सत्यार्थप्रकाश के जोड़ की दूसरी पुस्तक दुर्लभ है, जिसमें ज्ञान का अमूल्य खजाना भरा पड़ा है। इसलिए इसका प्रचार-प्रसार अनिवार्य है, जरूरी है।

योजना का विवरण निम्न प्रकार का होगा-१. सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में आकार लगभग ५१० पृष्ठ व साईज...............होगी। लागत मूल्य तीस रुपये प्रति पुस्तक व्यय होगा। **२.** ऋषि जीवन चरित्र हिन्दी में लगभग २०० पृष्ठ व साईज............. का होगा लागत मूल्य १५/- रुपये प्रति पुस्तक होगा। **३.** सत्यार्थप्रकाश हिन्दी से इतर (अन्य) भाषियों के लिए सी.डी.या डी.वी.डी. के माध्यम से उपलब्ध करवाया जायेगा। इस डी.वी.डी. में लगभग १८ भाषाओं में सत्यार्थप्रकाश होगा। लागत मूल्य लगभग २५/- होगा। **४.** ऋषि जीवन चरित्र अंग्रेजी में होगा। लागत मूल्य १०/- रुपये।

नोट-यह साहित्य वैचारिक क्रान्ति के लिए व वैदिक धर्म प्रचार-प्रसार के लिए गैर आर्यसमाजी सज्जनों व संस्थानों आदि को निःशुल्क या अल्प मूल्य में वितरित किया जायेगा।

साहित्य का ठीक-ठीक उपयोग हो व योग्य शिक्षित विचारवान् व्यक्तियों तथा संस्थानों तक पहुँचे इसके लिए अच्छी वितरण व्यवस्था की जाएगी। योग्य प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं का चयन कर कार्य में नियुक्त किया जायेगा।

प्रत्येक व्यक्ति, संस्था आदि से एक फार्म भरवाया जायेगा, जिसमें उनका पूर्ण पता सम्पर्क आदि हो। जिससे भविष्य में परिणाम का मूल्यांकन किया जा सके।

ग्रन्थों की प्रामाणिकता, शुद्धता व साज-सज्जा सुन्दरता का विशेष ध्यान रखा जायेगा। इस प्रचार-प्रसार योजना का उद्देश्य सत्यार्थप्रकाश व महर्षि के जीवन-चरित्र के प्रचार-प्रसार के माध्यम से मानव मात्र का कल्याण करना है।

यह प्रचार-प्रसार मुख्य रूप से शिक्षित गैर आर्यसमाजी लोगों के लिए होगा। यह कार्य पूर्णरूप से महर्षि के मन्तव्यों के अनुरूप हो इसका विशेष ध्यान रखा जायेगा।

इस कार्य की सफलता के लिए सभी आर्यजनों से, समाजों से व संस्थानों से निवेदन है कि इस महान् कार्य में तन-मन-धन से अपना सहयोग करने व अपने इष्ट मित्रों को भी सहयोग करने की प्रेरणा करें।

नोट-अपना आर्थिक सहयोग आप परोपकारिणी सभा अजमेर के नाम प्रेषित करते समय **सत्यार्थप्रकाश प्रचार-प्रसार शीर्षक** अवश्य लिखें।

धन प्रेषित करने हेतु आप चैक, ड्राफ्ट व सीधे राशि सभा के बैंक खाते में जमा करवाकर जमा पर्ची की प्रतिलिपि प्रेषित कर देवें या फिर ईमेल, दूरभाष द्वारा सूचित कर सकते हैं। धन्यवाद।

खाता धारक का नाम-**परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**
बैंक खाता संख्या-**10158172715**
IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाऊस के सामने, जयपुर रोड़, अजमेर।
बैंक खाता संख्या-**091104000057530**
IFSC-IBKL0000091

email : psabhaa@gmail.com

नोट : इस योजना हेतु दिया गया दान आयकर की धारा ८० जी के अन्तर्गत कर मुक्त होगा।

सम्पर्क : आचार्य दिनेश, चलदूरभाष-७७३७९०४९५०

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

श्री वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय द्वारा अभद्र भाषाप्रयोग और मिथ्या आलोचना

-विरजानन्द दैवकरणि

मेरे लिए श्री वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय द्वारा प्रदत्त अनेक विशेषणों से युक्त उपाधि पत्र मिला, एतदर्थ धन्यवाद! उन अभद्र उपाधियों के कुछ निर्देशन इस प्रकार हैं-

तथाकथित विद्वान्, विद्यादम्भी, मित्रता पर कुठाराघात करने वाला, ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों की हानि करने वाला, महामूर्ख, खुल्लम-खुल्ला झूठ बोलने वाला, व्यर्थ बकवास करने वाला, काली करतूत करने वाला, सत्यार्थप्रकाश की दुर्गति करने वाला, सृष्टि रचना और दार्शनिक बातें समझने का सामर्थ्य न होना इत्यादि।

इस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग करके भी मुझे मित्र कहकर पुकारना और लिखना परस्पर विरोधाभास ही है। मित्रता की यह विलक्षण परिभाषा आपके ही शास्त्र में मिल सकती है। ऐसे प्रयोग न विद्वत्ता के परिचायक है और न आर्यत्व के। सही तथ्य इस प्रकार हैं-

१. आपके पत्र (लेख) पर कुछ विचार व्यक्त कर रहा हूँ, इनमें कोई भी विचार छलकपट, वैमनस्य और असत्य से युक्त नहीं है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति मेरी हार्दिक श्रद्धा, आस्था और उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में निष्ठा है, इसीलिए उनके ग्रन्थों को यथावत् सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है। परोपकारिणी सभा में ऋषि ग्रन्थों के २० हजार पृष्ठों का लेमिनेशन मेरे सहयोग से कराया जा चुका है, शेष का कार्य चल रहा है। यदि ऋषि के प्रति कुछ भी उल्टीमति होती, तो ३५ वर्ष पूर्व से इस महत्त्वपूर्ण कार्य में योगदान नहीं करता। उनके लिखे-लिखाये एक-एक अक्षर को सुरक्षित करने का सदा यत्न किया है। आपने कभी गम्भीरता से जानने का यत्न नहीं किया, अन्यथा मेरे प्रति ऐसी दुर्भावना व्यक्त नहीं करते।

२. विद्या का दम्भ मैंने कभी किया ही नहीं दम्भ तो आप ही करते हैं।

३. ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों की हानि करने का तो प्रश्न ही नहीं होता। उन द्वारा लिखित किसी बात को ज्यों का त्यों छपवा देने में कोई सिद्धान्त हानि की बात नहीं है। कुछ होगी तो उसे दूर करने को सदा उद्यत हूँ।

४. मुझे कहा गया है कि "तुम ऋषि की गलतियाँ निकालते हो" परन्तु सत्य यह है कि ऋषि की गलतियाँ कोई नहीं निकाल रहा है, यह भ्रामक प्रचार किया जा रहा है। ऋषि जी ने सत्यार्थप्रकाश बोलकर लिखवाया, उसके पश्चात् पूरा ग्रन्थ दो बार स्वयं देखा, सुधारा, कहीं काटा, कहीं नया जोड़ा, यह सब करने के पश्चात् मुद्रणप्रति तैयार करने हेतु दूसरे लेखक को दिया उसमें भूल कहाँ रह गई जो कोई निकालेगा? मुद्रणप्रति बनाते समय उस लेखक ने कई प्रकार के परिवर्तन किये, जिनकी बहुत-सी जानकारी महर्षि की दृष्टि से ओझल रही। इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। जिज्ञासा-दृष्टि से जानना चाहें तो सप्रमाण बताये जा सकते हैं। इस बात में एक प्रतिशत भी झूठ नहीं है। प्रतिलिपि करने वाले ने ऋषि के शब्दों को बदलकर पर्यायवाची रख दिये। यथा-'तुल्य' के स्थान पर 'समान'। भूल से कुछ पंक्तियाँ छोड़ गया, कुछ पंक्तियाँ दुबारा लिख गया, दो पन्ने पलट कर लिखने लग गया, इसका ज्ञान एक बार हुआ तो इसका सुधार तभी कर दिया। दूसरे स्थान का पता नहीं लगा इसलिए वर्षों तक अधूरा सन्दर्भ छपता रहा, अनेक स्थलों पर अपनी भाषा प्रक्षिप्त कर दी, इत्यादि।

जब आप एक ऋषिभक्त शोधार्थी की दृष्टि से दोनों हस्तलेखों को मिलाकर देखेंगे तो स्वयं समझ जायेंगे उस समय के लेखक कितने लापरवाह और ऋषिभक्ति से शून्य थे। केवल जीविका हेतु उनके पास रहते थे। ऋषि उनकी कुटिलता को देखकर उन्हें हटा देते थे, पुनरपि ठाकुर जालिमसिंह आदि से सिफारिश करवा कर दुबारा काम पर आ जाते थे। ऋषि के इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं।

उपर्युक्त प्रकार की भूलें प्रत्यक्षत: उन लेखकों की हैं जो पुस्तक की प्रतिलिपि किया करते थे, उनको ऋषि के मत्थे मढना ऋषि के प्रति अन्याय है। मैंने अपने ज्ञान और सामर्थ्यानुसार ऋषि के ऋषित्व को सुरक्षित रखने का पूरा प्रयत्न किया है। मानव स्वभाववश कोई न्यूनता रही हो तो उसके लिए कोई हठ या दुराग्रह नहीं है। बताने पर स्वीकार होगी।

५. आप वेद मन्त्र बदलने का आरोप लगाते हैं। मेरा क्या अधिकार कि वेद के साथ खिलवाड़ करूँ। सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण और द्वितीय संस्करण की प्रतियों में छ: बार इसी प्रकार के मन्त्र लिखे हुए हैं। उनको लिखने-लिखाने वाले ऋषि और उनके लेखक थे। मैंने क्या बदल दिया? आपके सामने ऋषि का ऐसा लेख आयेगा तो आप उसे ऋषि की भूल बतायेंगे या उसका कोई अन्य समाधान करने का यत्न करेंगे? द्वितीय संस्करण में जो वेदमन्त्र अशुद्ध छपते आ रहे हैं, उनके विषय में आप अपना मत क्यों नहीं प्रकट करते?

६. रही डॉ. मंगलदेव आदि की विद्वत्समिति द्वारा पाण्डुलिपियों से मिलान करके सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित करने की बात। यह निश्चित है कि उन्होंने पूर्ण मिलान नहीं किया मैं लगभग १५० बड़े स्थल ऐसे दिखा सकता हूँ जहाँ मूलप्रति में

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

ऋषि का लिखाया हुआ पाठ है और वह अत्यावश्यक भी है, परन्तु उक्त विद्वत्समिति ने ग्रहण नहीं किया। सामान्य परिवर्तन तो १९०० से अधिक हैं। क्या आप मानते हैं कि आप द्वारा लिखित सारे विद्वान् एक साथ बैठकर लगातार इस कार्य में लगे रहे होंगे, अथवा उदयपुर-समिति की भांति (उन्होंने कथनानुसार) दो-तीन व्यक्तियों ने कुछ समय कार्य किया, सारे दस विद्वान् कभी एकत्र नहीं हुए, पुनरपि दस का नाम मिथ्या प्रचारित है। क्या उस समिति में भी ऐसा नहीं हुआ होगा? कुछ ने अपने सुझाव दिये होंगे, कुछ ने सन्देहास्पद स्थलों को मिला लिया होगा। अक्षरश: पूरे ग्रन्थ को आद्योपान्त देखते तो आवश्यक पाठ अवश्य ग्रहण करते, ऐसा मेरा निश्चित विचार है।

७. मैंने अकेले ने सत्यार्थप्रकाश पर कार्य किया है, इस पर आपको आपत्ति है। क्या अकेला व्यक्ति कोई काम नहीं कर सकता। क्या स्वामी वेदानन्द जी और पं. मीमांसक जी आदि ने अकेले कार्य नहीं किया? उनके प्राय: पाठ उदयपुर समिति ने ग्रहण कर लिये। क्या उदयपुर समिति में अकेले डॉ. रघुवीर जी ने अधिकतर कार्य नहीं किया? दूसरों का सहयोग अल्प मात्रा में था। इतना समय सभी विद्वान् एकत्र होकर नहीं दे पाते, और न दिया है। प्रश्न संख्या का नहीं गुणवत्ता का है।

८. ऋषि द्वारा लिखित सत्यार्थप्रकाश की भूमिका बदलने की बात का आरोप मुझ पर लगाया है। आपको यहीं ज्ञान नहीं कि मूलप्रति और मुद्रणप्रति में एकसी भूमिका है। मुंशी समर्थदान जी ने अपने हाथ से हाशिये पर भूमिका की भाषा को बदला है। इसमें एक ऐसा वाक्य है जिससे ऋषि जी पर बड़ा भारी आक्षेप पौराणिक लोग कर चुके हैं, जैसे............''इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है।'' क्या मुशी जी ऋषि दयानन्द से अधिक प्रामाणिक विद्वान् हैं? यहाँ आप लोगों ने मुद्रणप्रति और ऋषि के हस्तलेख की भी उपेक्षा कर दी, फिर भी स्वयं को ऋषिभक्त माना जा रहा है? स्पष्ट है कि ऋषि की भाषा निर्दोष है और मुंशी जी की दोषपूर्ण है।

इस वाक्य को लेकर पौराणिकों ने 'दयानन्द तिमिर भास्कर' में आक्षेप किया था कि स्वामी जी के स्वयं कथनानुसार इस सत्यार्थप्रकाश से पूर्व स्वामी दयानन्द के जितने ग्रन्थ हैं, वे सब अशुद्ध भाषा में हैं, क्योंकि शुद्ध भाषा तो अब सीखी है।

महर्षि जी की भाषा यह है-''इस समय इसकी भाषा पूर्व से उत्तम हुई है।'' यहाँ अशुद्ध भाषा होने का कोई लेख नहीं है। अत: यह भूमिका जो ऋषि जी ने लिखवाई थी अति उत्तम है न कि वह जो प्रचलित सत्यार्थप्रकाश (द्वितीय संस्करण) में छपती आ रही है।

९. आप ने मुझ पर आक्षेप किया है कि मैंने सत्यार्थप्रकाश की दुर्गति कर दी। अब प्रमाण सहित यह बताइये मैंने सत्यार्थप्रकाश की दुर्गति कहाँ की हुई है। यह भी सिद्ध करें कि वह बात किसी भी प्रति में न हो, और मैंने जोड़ी हो, (चतस्रोऽवस्था..........प्रकरण को छोड़कर)। दुर्गति जिन्होंने की है उनका नाम लिखने का न्याय और साहस तो आप करते ही नहीं।

१०. तृतीय समुल्लास में **क्रियागुणवत्.** आदि सूत्रार्थ सर्वत्र एक-सा है, इसमें परिवर्तन नहीं है, जैसा ऋषि जी ने लिखवाया हुआ है, वही छपा है। मैंने कभी दावा नहीं किया है कि मैं सब सूत्रों का भाष्यकार हूँ। यह विद्वत्ता की बू आपको ही बनी रहे। मैं अभिमानवश चैलेंज कभी नहीं करता। यह भावना आपकी पहले भी व्यक्त हो चुकी है और अब भी है। आपने जब मुझे 'महामूर्ख' मान ही लिया, तो मुझसे सूत्रार्थ पूछने की बात करना व्यर्थ है। आप बिना प्रमाण और युक्ति को विचारे कुछ भी लिख देते हैं। पहले भली-भाँति देख-परखकर फिर लिखा करें, ऐसा मेरा सुझाव है।

सत्यार्थप्रकाश को महर्षि की भाषानुसार शुद्ध प्रकाशित करने हेतु मैंने (मूलप्रति+मुद्रणप्रति+१८८४ में प्रकाशित द्वितीय संस्करण) इन तीनों पुस्तकों का मिलान किया है। यह कार्य आपको सत्यार्थप्रकाश की दुर्गति करना प्रतीत हो रहा है, तो आप अपने सुझाव दें कि किस मार्ग का अनुसरण करके आपकी दृष्टि में सत्यार्थप्रकाश की सद्गति होगी। और उस कार्य को कौन करेगा? क्या इस कार्य को करने में आप अपनी ऋषिभक्ति दिखायेंगे? क्या आप १८८४ ई. में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश को परम प्रमाण मानते हैं? क्या वह ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दिया जाये? तो करके दिखाइये न? यदि नहीं तो उसमें परिवर्तन कौन और किस आधार पर करेगा? क्या उस परिवर्तन के पश्चात् आपका ग्रन्थ आपके शब्दों में 'सर्वथा ऋषि प्रणीत' माना जायेगा? आप लोगों के पास इन बातों का कोई सही उत्तर नहीं है। केवल आलोचना कर देने से समाधान नहीं होता।

ऋषिवर के देहान्त के पश्चात् मूलप्रति और मुद्रणप्रति से भिन्नता लिए हुए सत्यार्थप्रकाश का जो भाग छापा है, वह आपकी दृष्टि में कितना प्रामाणिक और ऋषि-प्रणीत है? जिन आयतों को ऋषि जी पुनरुक्ति का दोष दिखाकर उद्धृत और समीक्षित कर रहे थे, उन आयतों को निकालने से क्या ऋषि जी का अभिप्राय सुरक्षित रह पाया है? क्या इस कार्य को आप 'काली करतूत' या 'ऋषि सिद्धान्त की हानि करने वाला' अथवा 'सत्यार्थप्रकाश की दुर्गति करने वाला' नाम देने का साहस कर सकते हैं? उदयपुर की विद्वत्समिति ने जो शब्द या वाक्य ऋषि भाषा में अपनी ओर से मिलाये हैं उनके विषय में आपकी क्या सम्मति है? यदि आप निष्पक्ष और ऋषिभक्त हैं तो सभी की समीक्षा करनी चाहिये। केवल एक-दो व्यक्तियों को लक्ष्य बनाकर उनके लिए अभद्र शब्दों का प्रयोग करके अपना पाण्डित्य दिखाना, क्या उचित है? यदि अभद्र शब्दों के प्रयोग में कुछ न्यूनता रह गई हो, तो शब्द कोष से और शब्द

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

चुनकर भी मेरे लिए प्रयोग कर लीजिये, उसी से ज्ञात हो जायेगा कि मैत्री की यह भी पहचान हुआ करती है।

आप द्वारा मुझे दूरभाष पर यह कहा गया कि 'आर्यजीवन' में मेरे नाम से जो छपा है, वह सरासर गलत है, मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा। मेरा भाषण इतनी तीव्र गति से होता है कि कोई लिख नहीं सकता। अब आप यह लिख रहे हैं कि 'आर्यजीवन' में जो छपा है उसे अब मैं अपना ही वक्तव्य भी मानता हूँ और लेख भी मानता हूँ। आपके इन दोनों वक्तव्यों में से सत्य कौन-सा है, यह भी बता दीजिये। आपका कर्त्तव्य था कि 'आर्यजीवन' के सम्पादक से पूछते कि आपके नाम से उसने यह असत्य वक्तव्य क्यों छापा? उसे तो सम्भवत: आपने कुछ नहीं कहा होगा, किन्तु मुझ पर निराधार आक्षेपों की झड़ी लगा दी। निराधार आक्षेप करना आपको शोभा नहीं देता।

महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर, हरियाणा।

भूल-भुलैया

-रमेश मुनि

संसार में मनोरंजन के लिए भूल-भूलैया रूपी भवन बनाए जाते हैं। इनमें प्रवेश करते समय यदि प्रवेश करने वाला बुद्धि का प्रयोग करके चलता है, तो बिना किसी के निर्देश के वापस बाहर निकल जाता है। अन्यथा उसमें उलझ कर रह जाता है, भटक जाता है। ऐसे भटके यात्री को निकालने के लिए कुछ पहरेदार होते हैं जो उसे बाहर निकलने का मार्ग बताते हैं।

इसी प्रकार से यह संसार भी भूल-भुलैया है। इसमें प्रवेश कराते ही ईश्वर ने नियम बता दिए, यदि इन नियमों को याद रखकर इनका पालन करेंगे तो पार हो जाएँगे अन्यथा इसी में जन्म-मरण के चक्कर काटते रह जायेंगे। जिस प्रकार भूल-भुलैया में भटके यात्री को रास्ता बताने के लिए पहरेदार होते हैं, उसी प्रकार से जगत में भी ईश्वर ने पहरेदार रखे हैं, जो भटके यात्रियों को पार निकलने का मार्ग बताते हैं, दिखलाते हैं। वेद, ऋषि ग्रन्थ, ऋषि, मुनि, योगी, आचार्य, विद्वान् सही मार्ग बतलाते हैं कि पार जाने के लिए इस मार्ग पर चलो। उनके बताए मार्ग पर चल पड़ेंगे तो लक्ष्य को पा लेंगे, यदि उनकी नहीं मानी अपनी अकल चलाई तो जन्म-मरण छूट नहीं पायेगा।

पिछले जन्मों में किए कर्म और भोगे कष्ट याद नहीं रहते, सब कुछ नया ही लगता है। यदि पिछला याद रहे कि कहाँ पिटाई हुई, विरोध और प्रतिकूलताएँ मिली, दु:ख झेलने पड़े और अब नई अवस्था में भी यही सब कुछ मिलना है। यदि पिछला याद रहे तो कष्ट देने वाले कर्म न करें, उन विषयों को न पकड़ें। किन्तु याद न रहने के कारण वैसे कर्म करते हैं, उन्हीं विषयों को पकड़ लेते हैं। ऋषियों ने अपने सभी अनुभव बताते हुए हमें चलने योग्य और छोड़ने योग्य मार्ग बताएँ हैं। फिर भी हम अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दु:ख को सुख और जड़ को चेतन मान रहे हैं। हमें दूर नगर में जाना है वहाँ जाने के लिए सुन्दर सड़क बनी हुई है किन्तु हम उस पर न चलकर विचार करते हैं हम अपना नया मार्ग बनाकर चलेंगे, जो सम्भव नहीं है और इस प्रकार हम भटक जाते हैं।

वेद मार्ग राजमार्ग है, साफ-सुथरा सीधा लक्ष्य तक ले जाने वाला है। इस मार्ग पर चलकर सामान्य व्यक्ति भी अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है। यदि कोई दूसरा मार्ग पकड़ लिया तो वह किसी अलग जगह पहुँचा देगा। अपने को अधिक बुद्धिमान समझने वाले लोग शास्त्रों का, पहरेदारों का विरोध करते हैं, और सोचते हैं मैं अपनी बुद्धि से नया रास्ता बनाकर लक्ष्य प्राप्त कर लूँगा। जो ऋषियों के या ऋषि ग्रन्थों के आप्त वचनों को नहीं मानते वे लोग नास्तिक होते हैं। ऋषि ग्रन्थों को स्वाध्याय का मुख्य ग्रन्थ मान उस पर चलकर कुमार्ग से बचें, ऋषि ग्रन्थों को समझने के लिए पुरुषार्थ करें, अपना आचरण व्यवहार वैसा बना कर यात्री सफल हो पार निकल सकता है। क्योंकि ये आप्त वचन पहरेदार हैं जो जगत रूपी भूल-भुलैया से बाहर निकलने का ठीक रास्ता बता रहे हैं। इनका पालन कर व्यक्ति मुक्त हो सकता है।

यदि आप्त वचनों पर पक्का विश्वास करके पुरुषार्थ करेंगे तो कुछ समय बाद कुछ अनुभूतियाँ यथा मन में शान्ति, ध्यान के समय मन की एकाग्रता आदि प्रतीत होने लगती हैं। दिखने लगता है कुछ मिल रहा है, जिससे ईश्वर के प्रति श्रद्धा बढ़ने लगती है। श्रद्धा के बढ़ने से पुरुषार्थ का बढ़ना, यह क्रम चलने लगता है। योगाभ्यास में ज्ञान का वर्गीकरण कर लेना चाहिए। विचार करें हमें किन-किन विषयों का जानना आवश्यक है, पुन: व्यर्थ के विषयों को विचारने में समय को खर्च नहीं करेंगे और समय को केवल जानने योग्य विषयों के चिन्तन-मनन करने में ही लगायेंगे। सफलता के लिए ईश्वर प्रणिधान बनाना आवश्यक है। इससे अवान्तर विषय भी आयेंगे उन्हें छोड़, जानने योग्य विषय को पकड़ लेना फिर उसे छोड़ना नहीं है। यदि बीच में कोई बाह्य विषय आ जाए तो उसे हटाने के लिए ईश्वर प्रणिधान बनाएँ, सफलता मिलेगी। जैसे किसी कवि ने लिखा है-

विषयों का विषधर जब डसे 'ओ३म्' जडी को चबा।
है नागदमन यह औषधि दूर न ढूंढन जा।।

इस प्रकार से यदि पहरेदारों द्वारा बताए निर्देशों का पालन करेंगे, तो संसार की भूल-भुलैया, जन्म-मरण के चक्कर से छूट अपने लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त कर सकेंगे। -**ऋषि उद्यान, अजमेर।**

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

वैदिक भक्ति का स्वरुप

-आचार्य शिवकुमार

प्रस्तुत लेख वैदिक भक्ति के सच्चे स्वरूप को दर्शाने के लिए लिखा जा रहा है। मनुष्य समुदाय में भक्त, भक्ति, भजन आदि शब्दों का अत्यधिक प्रचलन है। वैदिक साहित्य में इन पदों का मन्त्रों के भावार्थ के रूप में भी कई बार प्रयोग हुआ है। ये शब्द यौगिक होते हुए भी अपने सही अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थ में रूढ हो गये हैं। प्रसंगोपात्त अब हम भक्ति शब्द को कई प्रकार से परख कर देखते हैं। पूर्व व्याकरण की विधि से विश्लेषण करें। **भज-सेवायाम्** इस पाणिनीय धातु सूत्र से स्त्री आख्या कें '**क्तिन्**' प्रत्यय करने पर भक्ति शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ होगा, कर्तृनिष्ठ स्नेह संयुक्त मनोगत भावों से किसी परम आराध्य देव के गुण, कर्म, स्वभावों के साथ तन्मय होकर प्रीतिपूर्वक उसकी आज्ञा का पालन करना। इसी प्रकार से भाग, भक्त, भजन आदि शब्द भिन्न-भिन्न प्रत्यय करने पर सिद्ध होंगे। साम्प्रदायिक लोगों में एक जनश्रुति है कि भगवान् अपने भक्तों के प्रेम पाश में फंसकर स्वरचित नियमों को तोड़ देते हैं, किन्तु भक्तों के आग्रह को नहीं टालते। यह भक्त तथा भगवान् का सुन्दर प्रेम दिखाया है। इस कल्पित प्रेम में भावातिशय है, सत्य बहुत कम है, सत्य तो यह है कि भगवान् रचित हर नियम का पालन सच्चे भक्त द्वारा होना चाहिये, यही ईश्वरीय भक्ति का यथार्थ रूप है, अन्य तो लीला मात्र है। पुराण आदि तथा भाषा ग्रन्थों में भक्त, भक्ति तथा भजनीय भगवान् का बड़े विस्तार से वर्णन आता है। एक भाषा कवि तुलसीदास हुए हैं उन्होंने स्व कल्पना से एक मनोविनोदक रूपक बनाया है। वे ईश्वर उपासकों के दो भेद मानते हैं एक ज्ञानी दूसरा भक्त, क्रमश: ज्ञानी उपासक के लिए पद-पद पर सांसारिक पदार्थों के प्रति आकर्षण का भय बना रहता है किन्तु भक्ति करने वाले भक्त को सांसारिक पदार्थों के प्रति व्यामोहादि अर्थात् आसक्ति नहीं होती, अतएव एक ईश्वर भक्त सुरक्षित है। इस प्रतिपादन में शब्द साम्य हो सकता है। किन्तु अर्थ साम्य नहीं है। क्योंकि यह दोनों ही विशेषण एक ही विशेष्य के हैं, अर्थात् एक ही उपासक में ये दोनों गुण होने चाहिए। एक मूल कारक की ही दो उपाधि हैं, तथा ये दोनों ही गुण एकाधिकरण में स्थित हैं। सिद्धान्ताभिमत भक्ति तथा ज्ञान ईश्वर प्राप्ति के ये दो साधन अर्थात् उपाय हैं। यह परस्पर विरोधी नहीं बल्कि एक ईश्वर के सहायक, पूरक हैं। इसी प्रकार से ज्ञान, कर्म, कार्य स्थल ये त्रिपथ मानव जीवन को पवित्र करने के सुगम संगम हैं। इसी कोटि में अन्य उपाख्यान भी आते हैं। जैसे राम भक्त हनुमान ने अपना वक्ष:स्थल को विदीर्ण करके दिखा दिया था, भक्त सुतीक्ष्ण राम के आगमन की दीर्घकाल तक प्रतीक्षा करता रहा, मिलने पर स्वर्ग चला गया। भीलिणी शबरी के झूठे बेर राम ने खाये और उसको नवधा भक्ति का उपदेश दिया इत्यादि। इन पौराणिक उपाख्यानों में भक्ति अतिशय प्रतिभाषित तो हो रही है, किन्तु ज्ञान के प्रकाश के अभाव हैं। अत: सच्चे भक्तों के लिए यह विचारणीय बिन्दु है। ऐसे ही अन्योन्य भ्रमोत्पादक बातों से मानव समाज में कुपरम्परा चल पड़ती है। जैसे-सखीमत सखीभाव रखने वाले लोग पुरुष होते हुए भी स्त्रियों की तरह वस्त्राभूषण और नाना प्रकार के शृंगार करते हैं और अपना इष्ट श्रीकृष्ण को मानते हैं। जिस प्रकार पत्नी अपने पति को प्रसन्न करने के लिए विविध उपाय करती है उसी तरह सखी अपने सखा श्रीकृष्ण को रिझाने का अभिनय करते हैं इतना ही नहीं ये लोग परस्पर विवाह भी करते हैं। एक कोई इन्हीं पतितों में से कृष्ण बन जाता है, दूसरा कोई सखी बनकर अप्राकृतिक शादी करते और कराते हैं। ऐसे ही किसी कुमति के कारण इस देश का एक पठित व उच्चाधिकारी सखीपन की दीक्षा ले लेता है। यह श्रीकृष्ण की भक्ति तो नहीं हो सकती किन्तु उस महापुरुष के प्रति कलंक हो सकता है तथा कपट भक्तों के लिए काली करतूत अवश्य हो सकती है, अथवा सभ्य जनों को लज्जा से लज्जित करने वाली कोई कुचेष्टा हो सकती है।

अस्तु अब प्रतिपाद्य विषय पर आते हैं-वेद में देखें कि भक्ति शब्द भावार्थ के रूप में कहाँ और कितनी बार आया है। ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १२१ वें सूक्त में १० ऋचा हैं। इन दश ऋचाओं में से "विधेम" पद के भावार्थ में नौ बार भक्ति शब्द का प्रयोग हुआ है। इस सूक्त को "हिरण्यगर्भ" के नाम से जानते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी लिखित पुस्तक "संस्कार विधि" में इसी सूक्त के चार मन्त्रों का ईश्वर स्तुति प्रार्थना-उपासना प्रकरण में 'विधेम' पद के भावार्थ में चार बार भक्ति शब्द का प्रयोग किया है। वेदों के अद्यतन जितने भी भाष्यकार हुए हैं किन्तु महर्षि दयानन्द जैसा कोई भी वेद भाष्यकार नहीं हुआ है। जिन्होंने परम्परागत भाष्यों को सत्यार्थ में परिवर्तित किया तथा प्राचीन ऋषि शैली से मन्त्रगत पदों का निर्वचन किया, परन्तु दुर्दैव के कारण चारों वेदों का भाष्य नहीं कर पाये। यजुर्वेद सम्पूर्ण, ऋग्वेद का एक तिहाई भाग ही हुआ तब तक महाप्रयाण हो गया।

अत: विवेच्य बिन्दु को विशद करने के लिए इसी सूक्त की प्रथम ऋचा को लेते हैं।

हिरण्यगर्भ: समवर्त्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

प्रमाण स्थान-ऋग्वेद-१०-१२१-१, यजु-१३-४-२१, १-

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

२५-१०, अथर्व-४-२-७, तैत्तरीय संहिता-४-१-१-८-३, ताण्ड्य ब्राह्मण-९-९-१२ व मीमांसादर्शन अ.-१० पा-३ सूत्र १४ पर इसी मंत्र के कुछ पदों की विवेचना है।

पदार्थ-(अग्रे) सृष्टि की प्रागवस्था में (हिरण्यगर्भ:) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (समवर्तत) विद्यमान रहता है (जात:) प्रसिद्ध अथवा जनक वह (भूतस्य) उत्पन्न सम्पूर्ण जगत् का (एक:) एक मात्र (पति:) स्वामी (आसीत्) था, होता है (स:) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) द्युलोक को (दाधार) धारण करता है (कस्मै) सुख स्वरूप उस देव के लिए हम (हविषा) श्रद्धा और भक्ति विशेष से (विधेम) उपासना करें।

यहाँ सभी पदों की अनुपद विवेचना नहीं हो सकती अत: कतिपय पदों की ही विवेचना करना अभीष्ट हैं। जिससे विषयवस्तु सरल एवं सुगम हो जाएगी। उक्त सूक्त के नौ मन्त्रों में समान रूप से एक चरण का वर्तन हुआ है यथा-'कस्मै देवाय हविषा विधेम' यह चरण पुनरुक्त है, किन्तु पुनरुक्ति साभिप्राय है, अनभिप्रेत नहीं है। इसी चरण के एक, दो पदों पर चिन्तन करते हैं। एक पद है 'कस्मै' इसका मूल है किम्+किम्=कस्मै शब्द 'क' के अर्थ से निष्पन्न है 'क' अकारान्त है इस के राम तथा देव के समान रूप चलते हैं। जैसे-चतुर्थी विभक्ति में रामाय, देवाय ऐसे रूप होंगे तो नियमानुसार 'क' का काय ऐसा रूप बनना चाहिये किन्तु यहाँ सर्वादिगण पठित होनें से 'कस्मै' सिद्ध है, लौकिक भाषा में किम् अर्थात् 'क' का अर्थ प्रश्नवाचक है कारण कार्य सम्बन्ध से 'कस्मै' का अर्थ भी किसके लिए होना चाहिये किन्तु आर्ष ग्रन्थों के नियमानुसार 'क' का अर्थ है सुख क्योंकि यह वैदिक प्रयोग है और शतपथ तथा निरुक्त शास्त्र इसमें प्रमाण है। अत: यहाँ पर 'क' का अर्थ हुआ सुख स्वरूप प्रजापति परमेश्वर, इस रूप में मन्त्रगत पद का एक विलक्षण अर्थ निकलकर आया। एकार्थ को जतलाने के लिए 'कस्मै' पद में एकार भी प्रयुक्त है क्योंकि 'एकस्मै' ऐसा पाठ करने से निश्चयार्थ सिद्ध होता है, अत: 'ए' का छांदस लोप है। ''एकस्मै देवाय हविषा विधेम'' इति एकस्मै देवायेत्यर्थ:। ''एकारलोपेनैतच्छब्दविज्ञानादेतदर्थप्रत्ययो भवति।'' मीमांसादर्शन शाबर भाष्य अ. १०-३-१५ यह 'क' परमेश्वर का विशेष गुण है। अत: उस गुणी को वाचक बनकर बता रहा है क्योंकि वाच्य वाचक का नित्य सम्बन्ध है जैसे शब्द तथा अर्थ ये अन्योन्य द्योत्य-द्यौतक हैं। अत: जीवात्मा का परमोपादेय कर्म है ईश्वर प्राप्ति। अत: 'क'=सुखरूप परमात्मा की अष्टांगयोग विधि से उपासना करके सर्व दुखों से छूटना है। हविष्+टा 'हविषा' का अर्थ है उत्तम सामग्री, विभिन्न पदार्थों के संमिश्रण को शाकल्य या सामग्री कहते हैं किन्तु ध्यान देने की बात यह कि यदि इस अनेक पदार्थों के समूह को ही सामग्री कहते हैं या होती है तो श्रद्धा और भक्ति आदि ऐसे मार्मिक शब्दों का प्रयोग नहीं होता। तो निश्चित रूप से 'हविषा' का सामान्य अर्थ से कोई भिन्न विशेष अर्थ होगा। फलितार्थ आया, आत्मा और अन्त:करण के द्वारा भक्ति अर्थात् उसकी आज्ञा पालन करने में उद्यत रहें। सचमुच सबसे बड़ी हवि तो आत्मा की है, उसे ही उत्तमोत्तम हवि कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये। 'विधेम' उत्तम पुरुष का बहुवचन है, यह अस्मादादि की समग्रता को कहता है। इस पद में बहुत्व तथा विधित्व दोनों ही आधार-आधेय के रूप में प्रयोग हो रहे हैं। 'विधेम' पद के किसी अन्तरंग से ही भक्ति के रस को प्राप्त हो रहा है। किन्तु भक्ति के साथ श्रद्धा का होना अत्यावश्यक है क्योंकि बिना श्रद्धा के तो भक्ति भी निष्प्राण है। अभी पूर्व में 'कस्मै' शब्द में एकार का लोप कह आये हैं। उसी प्रकार भक्ति शब्द में भी 'वि उपसर्ग' का लोप जानना चाहिये। भक्ति का अर्थ है विभक्ति अर्थात् विभाजन-पृथकीकरण यथा-संस्कृत व्याकरण में एक ही राम को सात विभक्तियों में विभाजन कर दिया जाता है। राम एक है किन्तु कारक चिह्नों के आधार पर अर्थ भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार ईश्वर भक्त उपासकों को उपासना करते वक्त मानसिक तीन विभाग कर लेना चाहिये। अनादि तीन पदार्थ हैं-ईश्वर, जीव, तथा जड़ प्रकृति, सर्वप्रथम अध: क्रम से चलें। सत्, रज्, तम इन तीनों गुणों की जो साम्यावस्था होती है उसे प्रकृति कहते हैं। जब जगत् सृजन प्रारम्भ होता है, तब ये सभी पदार्थ गतिमान होते हैं तभी जड़ संघात पदार्थों से मानव तथा अन्य प्राणियों के शरीरों की रचना होती है यह प्रकृति जड़ एवं स्वरूप से अनादि तथा प्रवाह से चक्रवत चलती रहती है, यह चिन्मात्र है और मुक्ति का साधन रूप है, तथा अनासक्त भाव से भोग्य है। इस प्रकार प्रथम भाग का निरीक्षण करें।

मैं आत्मा, नित्य, अजर, अमर, अविनाशी, अभौतिक, अल्पज्ञ, स्वतन्त्रकर्ता कर्म करने में स्वतन्त्र फल भोगने में परतन्त्र सत् तथा चेतन हूँ। मेरी अनन्तकाल से यात्रा चल रही है, मैं सुख का अभिलाषी हूँ। उस सुख के लिए परमेश्वर का सानिध्य चाहता हूँ। यह दूसरा भाग है।

ईश्वर सत्, चित्, आनन्द स्वरूप, नित्य, निरंजन, अभौतिक, अजन्मा, सर्वव्यापक, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव इत्यादि अनन्त गुणों का पुंज है। यह तीसरा दर्शन है। इस क्रम को स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर करें। प्रथम प्राकृतिक पदार्थों का अवलोकन करें, पुन: अपने आप अर्थात् आत्मा का निरीक्षण करें तदुपरान्त परमेश्वर का दर्शन करें। यह पूरा परिक्रम भक्ति अर्थात् विभक्ति से पूर्ण होगा। ''भू: भुव: स्व:'' इन तीनों विशेषणों में से केवल 'स्व' अर्थात् सुख स्वरूप पर चित को एकाग्र करके धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास करें। त्रिक बनाने का एक दूसरा प्रकार भी है यथा-ध्याता, ध्यान, ध्येय। ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय। साधक, साधन, साध्य। इस त्रिपुट परिक्रम से भी इन तीनों पदार्थों को विभक्त कर सकते हैं। किन्तु यहाँ

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

ज्ञातव्य है कि यह केवल संप्रज्ञात समाधि में ही उपयुक्त है। असंप्रज्ञात समाधि में तो ध्यानकर्ता की ध्येयाकार वृत्ति हो जाती है। इस प्रकार से वैदिक (यथार्थ) भक्ति के स्वरूप का किंचित् दिग्दर्शन किया है। विस्तार भय से इस प्रतिपादन को यहीं विराम देना चाहता हूँ। निष्काम भाव से ज्ञानपूर्वक वैदिक भक्ति का आचरण करके अपने जीवन को सफल करने का प्रयत्न करें। अन्यथा अनमोल मानव जीवन असफल हो जायेगा।

(म.क.आ. गुरुकुल) वैदिक आश्रम, कोलायत, जनपद-बीकानेर, प्रान्त-राजस्थान (आर्य्यवर्त्त) ३३४३०२, चलभाष-०९४१३१४४०२९

कृपया ''परोपकारी'' पाक्षिक शुल्क, अन्य दान व वैदिक-पुस्तकालय के भुगतान इलेक्ट्रोनिक मनीऑर्डर से ना भेजें

निवेदन है कि ई.एम.ओ. द्वारा ''परोपकारी'' शुल्क, अन्य दान व वैदिक पुस्तकालय के पुस्तकों के भुगतान भेजने का कष्ट न करें, क्योंकि इस फार्म में न तो ग्राहक संख्या का उल्लेख होता है और न ही पैसे भेजने के उद्देश्य का। सभा कर्मचारी उचित खाता शीर्ष में राशि नहीं जमा कर पाते हैं क्योंकि पैसे भिजवाने का उद्देश्य ज्ञात नहीं हो पाता है। इस मनीऑर्डर फार्म में संदेश का स्थान रिक्त रहता है। कृपया साधारण एम.ओ. द्वारा ही राशि भिजवाने का कष्ट करें तथा फार्म में संलग्न समाचार वाली स्लिप पर ग्राहक संख्या, दान सम्बन्धी सूचना व पुस्तकों के विवरण का अवश्य उल्लेख करें। **यदि ई.एम.ओ. से भेजना है तो संपूर्ण स्पष्ट विवरण लिखा पत्र भी अलग से अवश्य प्रेषित करें।** **-व्यवस्थापक**

ई-मेल द्वारा परोपकारी निःशुल्क

परोपकारी के पाठकों को प्रसन्नता होगी कि अब परोपकारी ई-मेल द्वारा भी भेजी जा रही है। परोपकारिणी सभा की वेब-साइट पर तो परोपकारी पहले से ही निःशुल्क उपलब्ध है। विश्व में कहीं भी कोई भी इसे वेब-साइट पर पढ़ सकता है। इसके साथ ही अब यह सुविधा भी उपलब्ध कराई गई है कि परोपकारी आपके पास ई-मेल द्वारा पहुँच जाये। इससे यह पत्रिका शीघ्र व अधिक सुन्दर रूप में आप तक पहुँच सकेगी। आप जहां भी रहें, कभी भी पढ़ना चाहें, यह आपके पास रहेगी। डाक की अव्यवस्था से छुटकारा मिल सकेगा। यह आपको नियमित मिलती रहेगी। इससे रासायनिक रंगों व कागज का उपयोग भी कम होगा, खर्च भी घटेगा। अतः पाठकों से अनुरोध है कि **कृपया अपना ई-मेल पता सभा को ई-मेल से भिजवा देवें।** आप जिन इष्ट-मित्रों, परिजनों व संस्थाओं को परोपकारी भिजवाना चाहते हैं, उनके ई-मेल पते भी भिजवा देवें, उन्हें भी यह निःशुल्क भेज दी जायेगी। ई-मेल-psabhaa@gmail.com **-व्यवस्थापक**

अतिथि यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगांठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय जन्म तिथि/वैवाहिक वर्षगांठ आदि व दूरभाष संख्या सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नगद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर

(अथर्ववेद ३.२४.५)

(सौ हाथों से कमाओ, हजार हाथों से दान करो।)

पीड़ितों की सहायता के लिए अपने हाथ बढ़ाइये

आप सबको विदित है कि देश के अनेक भागों में बाढ़ का प्रकोप चल रहा है, विशेष रूप से उत्तराखण्ड में बाढ़ का भीषण प्रकोप हुआ है। नदियों के किनारे के अनेक नगरों के भवन गिर गए हैं। पहाड़ों में जल के प्रवाह में अनेक गाँव के गाँव बह गये हैं। यातायात व संचार व्यवस्था टूट गई। जिन लोगों के घर बह गये हैं, जिनके परिजन बिछड़ गये हैं, जो आज जीवन-यापन के साधनों का अभाव झेल रहे हैं, उन्हें आवास, भोजन, चिकित्सा के साधनों की अत्यन्त आवश्यकता है।

गरीब असहाय लोगों तक पहुँच कर उनकी सहायता, सहयोग करना, सभी देशवासियों का कर्त्तव्य है। इस कार्य के लिए परोपकारिणी सभा का सेवादल उत्तराखण्ड के इन बीहड़ क्षेत्रों में पहुँच गया और युवा लोग सेवा कार्य में जुट गये हैं।

हम सब मिलकर इस कार्य को आगे बढ़ायें। अत: हमारा सबका कर्त्तव्य है तन-मन-धन से इस कार्य में सभा की सहायता करें। आप जितनी शीघ्रता से अपना सहयोग प्रदान करेंगे हम उतनी शीघ्रता से उसे पीड़ितों तक पहुँचा सकेंगे।

आप अपना धन-बाढ़ पीड़ित सहायता कोष में भेजें। धन भेजने का पता निम्न प्रकार है-

१. बैंक खाता संख्या - 091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावरहाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक खाता संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

जो कार्यालय में आकर देना चाहे वे कार्यालय समय में १०.३० से ५.३० बजे तक कार्यालय परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर, राज. पर देवें। अन्य समय में ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर सम्पर्क कर अपना सहयोग जमा करा सकते हैं।

जो बैंक में राशि जमा कराना चाहें वे उपरोक्त पते पर जमा करा सकते हैं।

दिल्ली व आसपास के लोग अपनी सहायता निम्न पते पर दे सकते हैं-

श्री सत्यानन्द आर्य,
रोड़ सं. ४६-ए, आर्यसमाज मन्दिर,
पंजाबी बाग पश्चिम,
दिल्ली।

एवं सहयोग जमा कराकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

आपके सहयोग की प्रतीक्षा में **परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

सम्पर्क : दूरभाष-०१४५-२४६०१६४, ईमेल-psabhaa@gmail.com

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

स्वामी वेदानन्द जी से सम्बन्धित पुण्य संस्मरण

-यशपाल आर्यबंधु

बात सन् १९३६-३७ की है। मेरी अवस्था ६ साल की रही होगी। मेरे पूज्य पिता श्री कर्मवीर जी साधक (वानप्रस्थी) उस समय आर्यसमाज, कैम्बलपुर (अब पाकिस्तान में, रावलपिण्डी से आगे अटक के पास) के मन्त्री थे। आर्यसमाज मन्दिर मुख्य बाजार चौक में स्थित था। वह आर्यसमाज बड़ा प्रगतिशील था। दैनिक यज्ञ तथा सायंकालीन दैनिक सत्संग सहित अनेक कार्यक्रम होते थे। साप्ताहिक सत्संग में उपस्थिति विशेष उत्साहजनक हुआ करती थी। मैं और मेरे भ्राता श्री राजकुमार जी सहगल साप्ताहिक सत्संग में संध्या कराया करते थे तथा भजन आदि गाया करते थे।

आर्यसमाज में प्राय: कोई न कोई विद्वान्, संन्यासी, उपदेशक, भजनोपदेशक आकर ठहरा करते थे। उन उपदेशकों का भोजन आर्य परिवारों में ही होता था। सो हमारे घर पर भी विद्वानों को भोजन श्रद्धापूर्वक कराया जाता था।

एक बार आर्यसमाज, कैम्बलपुर में एक आर्य संन्यासी पधारे। भव्य आकृति, तेजस्वी मुखमण्डल तथा बड़े आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे वे स्वामी जी। उनके भोजन की व्यवस्था हमारे घर पर थी। पिता जी ने उन स्वामी जी से पूछा कि आप भोजन में क्या लेंगे। श्री स्वामी जी हमारे घर पर पहले भी आ चुके थे अत: उन्हें यह ज्ञात था कि हमने गाय पाल रखी है। स्वामी जी ने पूछा कि क्या गाय दूध दे रही है? पिता जी ने कहा-प्रभु कृपा से दूध की कोई कमी नहीं। इस पर स्वामी जी ने अपने झोले से बादाम, किशमिश आदि मेवे प्रचुर मात्रा में निकाल कर दिये कि यह ले जायें और खीर बनायें, खीर खायेंगे। स्वामी जी पेशावर, नौशहरा आदि मेवा उत्पादक क्षेत्रों से आ रहे थे। भक्तों ने मेवे से उनका झोला भर दिया था। पिता जी ने एक संन्यासी से मेवा लेना उचित नहीं समझा अत: उनसे निवेदन किया कि महाराज, मेवे की व्यवस्था हो जायेगी, आप इसे रखें। स्वामी जी बोले-मैं इतने मेवे का क्या करूँगा आप बच्चों को प्रसाद रूप में बांट दें। पिता जी ने मेवा ले लिया और यथेष्ट खीर बनाई गई। भोजन तैयार होने पर पिता जी स्वामी जी को बुला लाये। जब भोजन परोसा जाने लगा, तो स्वामी जी ने कहा कि-भोजन नहीं करूँगा, केवल खीर ही खाऊँगा। इस पर कांसे के एक बड़े बेले में उनके लिये खीर परोसी गई। वह खीर खा लेने पर स्वामी जी ने और खीर मांगी। पुन: एक बेला भर कर दिया गया। स्वामी जी ने वह भी खा लिया फिर और खीर मांगी। एक बेला खीर और दे दी गई। अब हम सब भाई-बहन बेचैन हो उठे कि यह बाबा तो सारी खीर खाये चला जा रहा है। हमारे लिये भी कुछ छोड़ेगा कि नहीं। हम सब उन्हें कोसने लगे। यहाँ तक कि घूरने भी लगे। हम घूरते थे तो बाबा मुस्कुरा देते थे। हमने समझा कि यह हमें चिढ़ा रहे हैं। जो भी हो, देखते ही देखते स्वामी जी ने सारी खीर खा डाली। उसके बाद जो उनकी हालत बिगड़ी, उसका वर्णन करना कठिन है। कभी उल्टी तो कभी दस्त। अमृतधारा आदि औषध दी गई, तो बहुत देर बाद उन्हें कुछ चैन मिला। पिता जी ने तो कह भी दिया कि जब स्वाद पर काबू नहीं है, तो कपड़े रंग लेने से क्या लाभ? हमारी साध्वी माता जी ने पिता जी को टोकते हुए कहा कि-आप आर्य और गृहस्थ मर्यादा को ताक पर रख रहे हैं। घर आये अतिथि को ऐसे शब्द नहीं कहते। इस पर स्वामी जी बोले-नहीं देवी जी इन्हें कह लेने दो। इन्हें कहने का पूरा अधिकार है। और जब उनका चित्त कुछ ठीक हुआ तो वे माता जी से बोले कि-''मन्त्री जी अपने कर्त्तव्य कर्म में सफल हुए और मैं विफल रहा। आपके पतिदेव ने मुझ से पूछा था कि-स्वामी जी क्या खायेंगे? यह उनका गृहस्थ धर्म था जो उन्होंने भली-भाँति निभाया। आपने स्वादिष्ट खीर बना कर श्रद्धा से खिलाई। अत: आप भी अपने कर्त्तव्य कर्म में सफल हुईं। पर मैं तो एक विरक्त संन्यासी था। क्या मुझे खीर के लिये कहना उचित था। नहीं, कदापि नहीं। आपके चले जाने के पश्चात् मुझे बड़ा पछतावा हुआ और मैंने प्रायश्चित करने की ठानी। मुझे यही उपाय कारगर लगा कि इतनी खीर खायी जाये कि खीर से घृणा हो जाये। और मैंने यही किया। मैंने इतनी खीर खाई कि अति कर दी और उसका परिणाम भी भुगता। अब यह मन कभी खीर नहीं मांगेगा। **मुझे खीर से घृणा हो जाये, इस लिये मैंने यह सब किया।** इधर पिता जी एक आर्य संन्यासी के प्रति अपने व्यवहार पर लज्जित हो रहे थे। पर हम सब भाई-बहिनों के चेहरों पर मायूसी बनी हुई थी। स्वामी जी ने यह देखा तो हमें प्यार से अपने पास बुलाया और कहा कि मेवे वाली खीर तुम लोगों को खाने को नहीं मिली, अब तुम लोग यह मेवा खाओ। और हमें भरपूर मेवा खाने को दिया। इतना ही नहीं उन्होंने हमारी माता जी से कहा कि बच्चों के लिये और खीर बनायें। जब तक बच्चे खीर खा नहीं लेते, मैं जाऊँगा नहीं। तब हमें स्वामी जी की महानता का बोध हुआ। माता जी ने खीर बनाई और हम सबने छक कर खाई, पर स्वामी जी की तरह नहीं कि खीर से नफरत हो जाये।

रात्रि को स्वामी जी ने अपने प्रवचन में खीर वाली घटना की चर्चा कर दी और कहा कि विषय तो विष से भी भयंकर होते हैं। विष तो खाने से मारता है पर विषय स्मरण मात्र से मार डालते हैं। यह विरक्तों को भी नहीं छोड़ते। विषय अपने पीछे

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

वासना छोड़ जाते हैं जो विषयासक्ति उत्पन्न किया करती है। इससे छुटकारा पाना अति दुष्कर है। इन्द्रियाँ जब विषयासक्त होकर उद्दाम भोग लिप्सा में प्रवृत्त हो जाती है, तो उनकी दिव्यता सब नष्ट हो जाती है और तब मनुष्य अपने मनुष्यत्व से पतित होकर पशुत्व को प्राप्त हो जाता है। तब तो बच्चे थे पर अब जब मनु जी, महात्मा विदुर तथा भर्तृहरि आदि के श्लोकों को पढ़ते हैं, तो स्वामी जी की बात की सत्यता उजागर होती है। वस्तुत: हमारी एक इन्द्रिय भी विषयासक्त होकर मार्ग से भटक जायें, तो मनुष्य का सब विवेक इस प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे फूटे हुए घड़े से पानी चू जाता है। और जब एक इन्द्रिय में दोष आ जाने से बुद्धि का नाश हो जाता है, तो फिर पाँचों में विकार आ जाने से क्या दुर्गति होगी, इसकी कल्पना भी भयावह है। सत्य है-

गज अली मीन पतंग भृंग इक-इक दोष विनाश।
जा के तन पाँचों बसें ता की कैसी आश?
और मन पाँचों के बस पड़ा, मन के बस नहीं पांच।
जित देखूँ तित लौ लगी, जित देखूँ तित आँच॥

यही कारण है कि आर्य संन्यासी गण अपनी एक भी इन्द्रिय को मार्ग से भटकने नहीं देते। और यदि भटकने लगे तो उसे दण्डित कर मार्ग पर लाते हैं।

उसके पश्चात् भी उक्त स्वामी जी कई बार हमारे घर पधारे। तब हम खीर के लिये पूछते थे तो कहते थे-ना बाबा ना। अब खीर का नाम न लेना। सुनते ही उलटी आ जायेगी।

जीवन कैसे जिया जाये-यह सीखना हो तो ऐसे ही तपस्वी त्यागी महात्माओं से सीखें। वस्तुत:-

Lives of the Great men all remind us,
We can make our lives subline.

अर्थात् महापुरुषों की जीवनियाँ हमें याद दिलाती हैं कि हम भी अपना जीवन पवित्र बना सकते हैं।

-आर्य निवास, चन्द्र नगर, मुरादाबाद-२४४०३२

ध्यान प्रशिक्षण योजना

ध्यान का महत्त्व सदा से रहा है। आज के तनाव व प्रतिस्पर्धा के वातावरण में यह अधिक आवश्यक हो गया है। नई पीढ़ी यज्ञादि कर्मकाण्ड की अपेक्षा-ध्यान में अधिक रुचि व आकर्षण रखने लगी है। प्रौढ़ों व वृद्धों की आध्यात्मिक उन्नति की चाह ध्यान के माध्यम से पूरी हो सकती है। समाज सुधार व उन्नति के इच्छुक व इसमें प्रयत्नशील आर्यों को ध्यान प्रशिक्षण का उपाय सार्थक लगेगा। ऐसी इच्छा वाले सज्जन अपने यहाँ किसी भी आर्यसमाज, आर्य संस्था, विद्यालय, महाविद्यालय, गुरुकुल, सार्वजनिक स्थान आदि में 'ध्यान-प्रशिक्षण' करवाना चाहते हों, तो कृपया अपने व कार्यक्रम-स्थान, समय आदि की पूरी सूचना के साथ सम्पर्क करें।

परोपकारिणी सभा द्वारा प्रशिक्षित अनेक ध्यान-प्रशिक्षक इस कार्य में सेवा के लिए तैयार हैं। आयोजकों को कार्यक्रम हेतु स्थान, बैठक-व्यवस्था, आवश्यक हो तो माईक आदि की व्यवस्था, प्रशिक्षक के निवास, भोजन, आवागमन यात्रा आदि की व्यवस्था करनी होगी।

सम्पर्क-संयोजक, ध्यान प्रशिक्षण योजना, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर, ३०५००१, दूरभाष-०१४५-२४६०१६४, ईमेल-psabhaa@gmail.com

सूचना

परोपकारी पत्रिका अपने लेख, कविताओं, प्रतिक्रियाओं, पाठकों के विचार, विज्ञप्ति के लिए आप लेखक-महानुभावों से अनुग्रहित होती रही है। आप सभी लेखक-महानुभावों से निवेदन है कि अपने लेख, प्रतिक्रिया, विचार, सुझाव, सूचना इत्यादि कुछ भी सामग्री, जो प्रकाशनार्थ भेजी जा रही है उसे मुद्रित कराकर, उसका प्रूफ-संशोधन कर ही भेजने की कृपा करें। जो महानुभाव अपनी प्रतिक्रिया पोस्टकार्ड में भेजना चाहते हैं, वे स्पष्ट, सुपाठ्य लिपि में लिखकर अथवा लिखवाकर ही भेजें। **-सम्पादक**

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

सत्य को स्वीकारना चाहिए

-नारायण प्रसाद 'बेताब'

२३ वीं मंज़िल वाली घटना के बाद कई वर्ष व्यतीत हो गए। परन्तु कोई घटना उल्लेखनीय याद नहीं। हाँ, एक घटना है जिसने मेरे जीवन को जीवन और मनुष्य योनि को किसी अंश में सार्थक बनाया।

कम्पनी भ्रमण करती हुई कराची पहुँची। पण्डित भवानीदत्त शर्मा लाहौरी कम्पनी के आर्टिस्ट थे। इत्तेफाक से हम दोनों के बाल-बच्चे साथ नहीं थे। दोनों एक स्वतन्त्र मकान में शामिल रहते थे। दूसरे शब्दों में हमारा मकान एक स्वतंत्र आर्यसमाज था। मैं नियम से चार बजे शाम को सत्यार्थप्रकाश की कथा कहा करता था। कम्पनी के बहुत से ऐक्टर बड़े प्रेम से सुनने आते थे। शंका समाधान भी खूब होता था। श्राद्ध पक्ष गुजर गया। नवरात्रियाँ जा रही थीं और विजयादशमी आ रही थी। हमारी दो सदस्यों की महासभा में प्रश्न उठा कि आज हजारों वर्षों के बाद भी लोग 'राम' को इतनी श्रद्धा भक्ति से क्यों याद करते हैं? उनकी स्मृति में दशहरे का त्यौहार इस धूमधाम से क्यों मनाते हैं? ऐसे उनमें क्या लाल जड़े थे? प्रश्न साधारण नहीं था। एक असाधारण पुरुष की आन्तरिक ज्योति को जानने की असाधारण जिज्ञासा थी।

(यहाँ मैं पण्डित भवानीदत्त शर्मा को केवल शर्मा जी लिखूँगा)

शर्मा जी-शायद भगवान राम, योग के आठों अंग अपने अन्दर उतार कर इस योग्य बने होंगे।

मैं-नहीं, यम, नियम, आसन इत्यादि का तो शायद पालन किया हो परन्तु समाधि का पता नहीं। पहला अंग है 'यम' इसमें पाँच पखें (कठिनाइयाँ) ऐसी लगी हुई हैं कि इनसे पार होना कठिन है-

१ २ ३ ४ ५
अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

पहली ही पख है 'अहिंसा'। भला अहिंसा का पालन किस तरह हुआ होगा? ताड़का राक्षसी को मारा, खर, दूषण को मारा, बाली को मारा, वह भी बुरी तरह। मैदान में उतरकर नहीं, पेड़ के पीछे छुपकर, क्षत्रियों को शरमाने वाले ढंग से। इसमें अहिंसा किस तरफ़ बैठी होगी?

शर्मा जी-अष्टांग योग की सिद्धि न होगी तो धर्म के दसों लक्षण जरूर अपने अन्दर धारण कर लिए होंगे।

मैं-तो हम भी क्यों न धारण कर लें और क्यों न 'राम' बन जाएँ?

शर्मा जी-इस जन्म में तो असम्भव है। हाँ! अभी से बनना आरम्भ कर दो शायद जन्मान्तरों में बन जाओ।

मैं-भाई जी! हिम्मत न हारो। जरा जाँच-पड़ताल तो करें कि दस लक्षणों में ऐसी क्या कठिनता है जो हमारे लिए असाध्य है।

दिन में तो कम्पनी का काम था ही रात्रि के लिए भी काम निकल आया। 'दशकं धर्मलक्षणम्' की जाँच-पड़ताल शुरू हुई तो ऊँट पहाड़ के नीचे आने लगा।

१. धृतिः-सदा धैर्य रखना।

यह तो मुश्किल है। तनख्वाह में दो दिन की देर हो जाती है तो छक्के छूटने लगते हैं।

२. क्षमा-निन्दा, अपमान, हानि आदि दुःखों को सहन करना और निन्दक वगैरह को मुआफ कर देना।

मुआफ करने की व्याख्या यह नहीं है कि जोरावर सिंह का तमाचा मुँह पर पड़ा और हमने उन्हें क्षमा कर दिया। क्षमा का अर्थ मौलाना 'हाली' ने खूब समझाया है।

मूसा ने यह की अर्ज के अय बारे खुदा!
मक़बूल तेरा कौन है, बन्दों में सिवा?
इर्शाद हुआ, बन्दा हमारा वह है,
जो ले सके और न ले बदी का बदला।

यह कैसे हो सकता है? हम तो पिंजरे के शेर हैं। बे-काबू हों तो कुछ नहीं बोलते, बस चले तो खून पी जाएँ।

३. दम-मन को सदा धर्म में प्रवृत्त करके अधर्म से रोकना अर्थात् अधर्म की इच्छा भी न करना।

यह कुछ आसान था मगर इसमें मन को रोकने की शर्त बेढब है। मन महाशय का तो यह हाल है कि जहाँ किसी नवयौवना पराई स्त्री को देखा कि आपे से बाहर हुए। हाँ! लोमड़ी के हाथ न आने से अंगूर खट्टे हो जाएँ तो भले ही हो जाएँ परन्तु कूद-फाँद में कमी करना तो महापाप है।

४. अस्तेय-चोरी त्याग। बिना आज्ञा, छल-कपट और विश्वासघात से पराई चीज़ पचाना।

परमात्मा का शुक्र है कि यह हमें स्वभाव से ही नहीं आता, परन्तु केवल वही चोरी, जो शरीर से हो सकती है। मन और वचन की चोरी तो हम महन्त भेस में भी करते रहते हैं।

५. शौच-राग, द्वेष, पक्षपात को हटाकर अन्तर-शुद्धि और जल मृतिका मार्जन आदि से बाहर की शुद्धि करना।

ना साहिब! यह बस की नहीं। हाँ! इसमें से आधी बात पसन्द है। मृतिका छोड़ हम साबुन से हाथ धो सकते हैं, परन्तु राग, द्वेष और पक्षपात जैसे मल को धो डालना हमारा काम नहीं।

६. इन्द्रिय निग्रह-अधर्माचरण से रोककर इन्द्रियों को धर्म में चलाना।

इन्द्रियों का गुरुघंटाल एक मन ही कहा नहीं मानता तो यह दस-दस क्या मानेंगी।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

७. धी-मादक द्रव्य, बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य प्रमादादि को छोड़ना और सद्बुद्धि से काम लेना।

यह भी कहने में तो सीधी मगर है जरा टेढ़ी खीर।

८. विद्या-पृथ्वी से लेकर परमेश्वर तक का यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना। जो कुछ मन में हो वही कर्म में बर्ताव करना।

ऐसा बर्ताव किया तो बस रह लिए दुनिया में।

९. सत्य-जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना, वैसा ही बोलना और वैसा ही करना।

इसमें कुछ आशा की झलक है बशर्ते कि कुछ विघ्नों का सामना करने का सामर्थ्य ईश्वर दे।

१०. अक्रोध-गुस्सा न करना।

भला कोई बात ठहरी, शक्ति हो और गुस्सा न आए। यों तो हम भारतवासी प्राय: इस नियम का पालन करते ही रहते हैं। गद्दियों पर सेठ जी अपनी भूल को मुनीम जी के सर थोप देते हैं और मुनीम महाशय को गुस्सा नहीं आता। दफ्तरों में ऑफिसर बिना अपराध क्लर्क को डाँट देते हैं और कुलीन क्लर्क को गुस्सा नहीं आता। पवित्र बूट की ठोकर से तिल्ली फट जाती है और हमें गुस्सा नहीं आता। अक्रोध का अभ्यास तो है परन्तु धर्म के नाम से अंगीकार करें तो इतना महात्म्य कहाँ?

बस हो ली धर्म-लक्षणों की परीक्षा और पड़ताल? बन गए राम! उड़ान तो बहुत ऊँची चाही थी मगर पर तो चींवटी के थे रह गए दो इंच फुदक कर। तथापि 'फूल न सही फूल की पंखड़ी ही सही' इस कहावत के अनुसार सबसे सुगम, सबसे आसान नवें लक्षण सत्य पर दृष्टि ठहर गई। यह भी गनीमत है, जहाँ पाई प्रतिशत लाभ न हो वहाँ दस प्रतिशत लाभ मिल सके तो कुछ कम नहीं है। सत्यार्थप्रकाश की कथा ने मकान के वायुमण्डल को पवित्र कर रखा था, इसीलिए इस पवित्र भावना के लिए मन में भी स्थान निकल आया।

जन्म सुधार आरम्भ करने के लिए दशहरे का दिन निश्चित कर दिया। मित्रों को निमन्त्रण दिया गया। सौ सवा सौ सज्जनों की छोटी सी सभा में हवन हुआ। एक संन्यासी भी कहीं से आ गए थे, उनका व्याख्यान हुआ।

चार याज्ञिक इस यज्ञ में दीक्षित हुए-**१.** पंडित भवानीदत्त शर्मा, **२.** पुरुषोत्तम मानचन्द नायक, **३.** महाशय लीलाधर, **४.** मैं-नारायण प्रसाद 'बेताब'

और चारों ने भरी सभा में प्रतिज्ञा की-' ' कि चाहे किसी मुसीबत का मुकाबिला करना पड़े, अपमान होता हो, आर्थिक हानि हो, कौटुम्बिक क्लेश उत्पन्न हो जाए, तथापि हम झूठ कभी नहीं बोलेंगे।''

प्रतिज्ञा के शब्द थोड़े और असर बहुत था। चारों दीक्षित मौन खड़े थे पर उपस्थित सज्जनों के कान में कोई कह रहा था वो ऐसे दत्तचित्त होकर सुन रहे थे मानों प्रत्येक याज्ञिक बड़ी दृढ़ता और वीरता से मौन भाषा में कह रहा है कि-

यह सम्भव है कमल के फूल पैदा हों पहाड़ों पर,
मगर और मछलियाँ रहने लगें वृक्षों पे झाड़ों पर,
खजूरों में कसेरू हों, फलें अंगूर ताड़ों पर,
ऋषीजन भी करें भोजन अगर मरघट के हाड़ों पर,
इसे मैं मानता हूँ ज्ञान, बल अत्यल्प है मेरा,
बदल सकता नहीं आजन्म जो संकल्प है मेरा।

'बोलो सद्धर्म की जय!' इस ध्वनि से मकान गूँज उठा। उपस्थित सज्जनों का मिठाई से सत्कार किया गया। इस प्रकार यह सत्रहवाँ संस्कार समाप्त और वृत्ति-परिवर्तन-यज्ञ आरम्भ हो गया।

आरम्भ करना तो सुगम था-कर दिया, परन्तु निर्विघ्न समाप्त करना-अर्थात् मध्यकाल में पूर्ण रूप से प्रतिज्ञा का पालना करना-सुगम नहीं था। सारी उम्र झूठ बोलने का फ़र्स्ट क्लास अभ्यास प्रतिज्ञा को भुला दे तो आश्चर्य ही क्या है! याद दिलाने के लिए हर वक्त एक नौकर साथ नहीं रखा जा सकता। रख भी लो तो यह काम नौकर कर भी नहीं सकता क्योंकि वह मुझे झूठ बोलने पर उसी वक्त टोक सकता है, जबकि मैं झूठ बोल चुकूँगा। ऐसी याद के लिए प्राय: लोग रुमाल में गाँठ लगा लिया करते हैं। रुमाल भी कहीं भूल गए तो याद कौन दिलाए? इसलिये मैंने खूब सोच-समझकर हृदयपट के कौने में गाँठ लाग लेना उचित समझा। परन्तु भय हुआ कि कहीं यह भी बाह्य विकारों के आवरण से प्रच्छन्न न हो जाए। गृहस्थ जीवन में हर वक्त अन्तरोन्मुख रहना-अन्त:करण की तरफ ध्यान लगाए रहना-भी असम्भ है। अत: कोई चौकीदार ऐसा चाहिए कि रहे तो बँगले के बाहर, और सावधान रखे बँगले के अन्दर रहने वाले भवनाधिपति सेठ को। बस उसी रोज़ से पवित्र-प्रकृति पहरेवाला, चलते-फिरते बँगले के द्वार पर बिठा दिया है-अर्थात् भगवा अमामा (साफ़ा) सर पर और भगवा उपरणा (दुपट्टा) काँधे पर धारण कर लिया है। इसे स्थायी पोशाक समझिये या धर्म सैनिकों के सेवकों की वर्दी या मुक्ति फौज (Salvation Army) का दशमांश ड्रेस या अर्द्धसंन्यासी का भेस, या कपट-पट, गरज कुछ भी कह लीजिए, ब-हरहाल अब यह चौकीदार बगैर कुछ बोल केवल अपने अस्तित्व से ही सेठ को सावधान रखता है और मैं प्रतिज्ञा को हर वक्त सामने देखता हुआ जिन्दगी की मंजिलें तय कर रहा हूँ।

-बेताब चरित 'मंजिल-२४'

मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके विज्ञानयुक्त मन से शरीर वा आत्मा के आरोग्यपन को बढ़ाकर यज्ञ का अनुष्ठान करके सुखी रहें।-**महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद भावार्थ-४.१७।**

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

किशोर-वय का भटकाव

-प्रताप कुमार 'साधक'

'आठवीं कक्षा के एक विद्यार्थी ने अपने पिता की पिस्तौल से अपने सहपाठी को गोली मार दी।' 'दो किशोर वय बालकों ने अपने एक साथी को नदी में डुबोकर मार डाला।'-ऐसे समाचार आजकल पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ने को मिल रहे हैं। अभिभावक हताश हैं और चिन्तक हतप्रभ। कोई इसका दोष दूरदर्शन को दे रहा है, तो कोई इसके लिए पाश्चात्य संस्कृति को कोस रहा है। बालक, बालिकाएँ छोटी आयु में ही वयस्कों सा व्यवहार करते देखे जा रहे हैं। जो कसर थी, उसे यौन-शिक्षा देकर पूरी करने का प्रयास सरकार कर रही है। आखिर नई-पीढ़ी के इस भटकाव का कारण क्या है? इसके लिए कौन उत्तरदायी या दोषी है?

प्राय: हम किसी समस्या का समाधान ढूँढने के लिए उसके मूल की खोज नहीं करते, अपितु एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति के समान लक्षणों को दबा देने में ही विश्वास रखते हैं। किसी सम्पन्न आधुनिक परिवार में जाइये, अश्लील फिल्मों के गाने गाते और उस पर बेहूदे ढंग से कमर मटकाते बच्चों का प्रदर्शन करते हुए उनके माता-पिता प्रमुदित होकर खिलखिलाते और उनकी प्रशंसा करते हुए मिलेंगे। वे आपके सामने ही अपने बच्चों से 'फेवरिट' हीरो और हीरोइन का नाम पूछेंगे और इस बात पर गर्व अनुभव करेंगे कि उनका पांच वर्ष का नन्हा यह बतला रहा है कि किस-किस फिल्म में किस-किस एक्ट्रैस ने 'सैक्सी-डान्स' किए हैं। यदि इन्हीं बच्चों से गायत्री मन्त्र या ईश्वर का मुख्य नाम ही पूछ लीजिए तो न केवल बच्चे अपितु उनके अभिभावक भी विस्मय से आपका चेहरा देखने लगेंगे। मुझे कई बार आर्यसमाजी बुजुर्गों ने भी अपने बिगड़ैल युवा पुत्रों को समझाने, आदेश देने का आग्रह किया, ताकि वह बुरी आदतें छोड़कर धार्मिक कर्म-काण्डों में रुचि ले, किन्तु ऐसा ही अनुरोध उनके शैशवावस्था में करने वाला शायद ही कोई कभी मिला हो। मैंने प्राय: ऐसे सज्जनों को यही कहा है कि पौधा छोटा रहने पर ही उसे इच्छित प्रकार से मोड़ा जा सकता है, वृक्ष बन जाने पर ऐसा कर पाना सम्भव नहीं।

हमारे ऋषियों ने सन्तान का निर्माण करना माता-पिता का प्रमुख दायित्त्व बतलाया है, जिसके लिए संस्कारों की अपरिहार्यता स्थिर की है। 'माता निर्माता भवति' कहकर यह स्पष्ट कर दिया है कि सन्तान का निर्माण करने में माँ सर्वाधिक सक्षम होती है। इतिहास साक्षी है कि सुविज्ञ माताओं ने अपनी सन्तानों को अपनी इच्छानुसार बनाकर उपरोक्त कथन को सत्य सिद्ध किया है। बच्चे का निर्माण गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है-यह मान्यता केवल भारतीय ऋषियों की ही नहीं है अपितु मनोविज्ञान भी इसे स्वीकार करता है। यही कारण है कि बच्चे के प्रारम्भिक तीन संस्कार-गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन-बच्चे के जन्म से पूर्व ही करने का विधान है। वस्तुत: गर्भस्थ शिशु का अन्त:करण (मन, बुद्धि, चित्त) स्वतन्त्र रूप से क्रियाशील न होकर माता से ही संयुक्त रहता है। इसलिए माँ जो कुछ सोचती, विचारती है अथवा उसका जैसा खान-पान एवं व्यवहार होता है, उसके संस्कार गर्भस्थ शिशु के चित्त में भी अंकित होते जाते हैं। जन्म के बाद बच्चे द्वारा माँ का दुग्ध-पान करते समय भी माँ का अन्त:करण बच्चे के अन्त:करण को आंशिक रूप से प्रभावित करता है। यही कारण है कि पूर्वकाल में शिक्षित माताएँ अपने मानसिक विचारों से सन्तान का निर्माण तदनुसार करने में सफल होती थीं। इसलिए गर्भवती माताओं को दु:खी होने, बुरे चित्र (टी.वी. आदि पर) देखने और कुत्सित विचारों से बचना चाहिये। बच्चे को दुग्ध-पान करने के पूर्व अपनी मन:स्थिति वात्सल्यमयी बना लेना बच्चे के भविष्य के लिए लाभप्रद होता है।

जब बच्चा कुछ-कुछ बोलने और समझने लगता है, तब उसे अपनी माँ ही 'सर्वज्ञ' जान पड़ती है। वह माँ की बातों को सत्य मानता है और माँ के कहे का ही अनुकरण करता है। इस समय माता जैसी शिक्षा बच्चे को देती है या उसके सामने आचरण करती है, बच्चा उसे ही स्वीकार और ग्रहण करके वैसा ही बनने लगता है। धीरे-धीरे आयु बढ़ने के साथ वह अपने पिता, दादा-दादी, बड़े भाई-बहन आदि से भी सीखने लगता है।

विद्यालय जाने के बाद वहाँ के शिक्षक-शिक्षिका भी उसके मार्गदर्शक बन जाते हैं, किन्तु पाँच वर्ष की आयु तक बच्चे के लिए सबसे अधिक प्रामाणिक उसकी माँ होती है। इस आयु तक चित्त पर पड़े हुए संस्कार जीवन भर अमिट रहते हैं। इसीलिए सन्तान के निर्माण का दायित्त्व माँ पर सर्वाधिक माना गया है।

चूँकि मनुष्य द्वारा किए जाने वाले कर्मों का आधार मुख्य रूप से उसके संस्कार होते हैं, अत: संस्कारों के बारे में स्पष्ट जानकारी होना हमारे हित में ही है। मनुष्य जो भी कर्म मन लगाकर करता है, उसका अंकन चित्त पर होता जाता है।

जिन कर्मों को बार-बार किया जाता है, उनका अंकन अधिक प्रभावी होता है। किए कुछ कर्मों (मानसिक, शाब्दिक या शारीरिक) का यह अंकन ही संस्कार कहलाता है, जो सामान्यत: अमिट होता है। मृत्यु होने पर स्थूल शरीर तो छूट जाता है, किन्तु अन्त:करण आदि सहित सूक्ष्म शरीर जीवात्मा

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

के साथ अगले शरीर में भी पहुँच जाता है। अत: पूर्व जन्मों के संस्कार वैसे ही चित्त में बने रहते हैं। इनके प्रभाव से वैसे ही कर्म पुन: करने की वासना (इच्छा) बनती है और सामान्यत: मनुष्य इनसे प्रभावित हुआ कर्म कर बैठता है। यही कारण है कि एक ही परिवार में एक ही माता-पिता से उत्पन्न सन्तानों के स्वभाव एवं प्रवृत्ति में अन्तर दिखलाई पड़ता है। किन्तु किन्हीं संस्कारों को दबाए रखना और किन्हीं को सक्रिय कर देना परिस्थितियों और व्यक्ति की दृढ़ इच्छा शक्ति पर निर्भर करता है। जैसे-विभिन्न पौधों के बीज पृथ्वी में पड़े रहने पर भी ऋतु अनुकूल बीजों का ही अंकुरण होता है, ऐसे ही अनुकूल परिस्थितियों के होने पर ही संस्कार उद्भुत होकर कर्म के लिए प्रेरित करते हैं। अत: हम बुरे संस्कारों के प्रभाव से बचना चाहें तो वैसी परिस्थितियों, कुसंगों, कुविचारों से बचें, इसीलिए सत्संग और स्वाध्याय का महत्त्व है।

आधुनिकता के इस युग में बालकों-किशोरों को स्वच्छन्द छोड़ देना, उनके मानसिक विकास में सहायक माना जा रहा है। किन्तु बौद्धिक परिपक्वता के अभाव में ग्रहणीय और त्याज्य में भेद न कर पाने से उन सब नवीन बातों को ग्रहण करने को उत्सुक रहते हैं, जो समाज में दिखलाई देती हैं। मन, अहंकार और इन्द्रियों को भाने वाली बातें उन्हें शीघ्र आकर्षित कर लेती हैं, क्योंकि उनके परिणामों का ज्ञान उन्हें नहीं होता। इसलिए अभिभावकों व गुरुओं का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे किशोरों को प्रत्येक नई बात की सही-सही जानकारी के साथ उसके परिणाम से भी अवगत कराते रहें। साथ ही उन्हें सजग होकर, चाहे गुप्त रूप से भी, बालकों के क्रिया-कलापों की जानकारी करते रहना चाहिये और जब भी आवश्यक लगे उन्हें गलत मार्ग पर जाने से बचाने के लिए समुचित निर्देश या परामर्श भी देना चाहिये। किन्तु, ऐसा करने के लिए उन्हें अपना आचरण भी आदर्श रूप में रखना होगा, क्योंकि बालकों में नकल की प्रवृत्ति होती है, अत: वे अभिभावकों-गुरुओं के वचनों की अपेक्षा कर्मों से अधिक प्रभावित होते हैं।

एक बात और-इस अर्थ प्रधान युग में प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक धन कमाने की होड़ में लगा है। इसे ही सर्वाधिक प्राथमिकता देने के फलस्वरूप वह धन कमाने की संवेदनहीन मशीन बन जाता है और अपनी पत्नी व सन्तान के प्रति अपने दायित्त्व को भुला बैठता है। उसके पास अपने परिवार के साथ बैठकर कुछ प्रसन्नता के पल बिताने का भी अवसर नहीं रहता। स्थिति तब और खतरनाक हो जाती है जब 'महिला सशक्तिकरण' के नाम पर पत्नी भी पति से कम न रहने की होड़ में नौकरी कर लेती है। फलस्वरूप दिशा-निर्देश देना तो दूर, बच्चों की अपनी 'समस्याओं' को सुनने अथवा अपनत्व भरे वातावरण में प्यार भरी दो बातें करने का समय भी ऐसे माता-पिता के पास नहीं रहता। तथाकथित 'उच्च' परिवारों में बच्चे अपने माता-पिता से कई-कई दिनों तक मिल ही नहीं पाते, अथवा मिलते भी हैं तो केवल रात्रि-भोजन के समय डाइनिंग टेबल पर। माँ-बाप के प्यार को तरसते हुए ऐसे किशोर-वय तक पहुँच चुके बच्चे घर से बाहर किसी के भी दिखावटी, नकली प्यार से तुरन्त आकर्षित हो जाते हैं, फिर उसका परिणाम जो भी हो।

मैं नहीं समझ पाता हूँ कि लोग अधिक से अधिक धन कमाकर क्या पाना चाहते हैं? यदि धन कमाने की प्रक्रिया में पारिवारिक सुख-शान्ति समाप्त हो गई, सन्तान हाथ से निकल गई, तो ऐसी सम्पदा का क्या उपयोग है? 'रहीम' की इस प्रार्थना पर विचार करें-''रहिमन इतना दीजिए, जा में कुटुम्ब समाय। मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाए।'' वास्तव में धन कमाने से कठिन होता है-सही रूप से उसे उपयोग में लाना। हम धन के द्वारा यदि सपरिवार प्रेम, प्रसन्नता और संतोषमय जीवन बिताते हुए समाज को अच्छे नागरिक प्रदान कर पाते हैं, तभी अर्थोपार्जन की सार्थकता है। बालकों-किशोरों को भटकाव से बचाकर उचित-उन्नत मार्ग पर चलने के लिए निर्देशित और उत्साहित करते रहना माता-पिता का प्रथम और अनिवार्य कर्त्तव्य है, जिसका पालन करना हम सबका सामाजिक धर्म है।

चश्मा एक-काम अनेक

वो दिन गये जब चश्मे सिर्फ देखने के लिये हुआ करते थे। शोधकर्ता अब ऐसे हाई-टैक चश्मे बनाने में जुटे हैं जो व्यक्ति की मदद करेंगे बेहतर सुनने और सोने में। इतना ही नहीं व्यक्ति इनकी मदद से बेहतर खुशी भी महसूस कर सकेगा। बरमिंघम की एस्टन युनिवर्सिटी में ऑप्टोमीट्री के अध्यक्ष डॉ. फ्रैंक एपरयेसी का कहना है कि, ''केवल बेहतर दृष्टि ही नहीं, चश्मे पहनने से और बहुत लाभ हो सकता है।'' हाल ही के शोधों से सामने आया है कि जिस तरह की लाइट आँख में प्रवेश करती है उसमें कुछ परिवर्तन करने से शरीर पर उसका गहरा प्रभाव होता है। डॉ. एपरयेसी ने कहा, ''हमारे दृष्टि तन्त्र की बेहतर समझ तथा हमारे शरीर के अन्य अंगों-विशेषकर हमारे मस्तिष्क से-उसका सम्बन्ध व हल्के मैटीरियल के विकास के परिणामस्वरूप ऐसे स्मार्ट चश्मे बनाने में मदद मिली है जिनका उपयोग कई तरह की स्वास्थ्य समस्याओं का पता लगाने में और उनका उपचार करने में किया जा सकता है। **सौजन्य-राष्ट्रदूत, दि. -०७.०१.२०१३**

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

वेद और विदेशी विद्वान्

-स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

मैंने १७ दिसम्बर १९८५ को साउथ अफ्रीका की प्रसिद्ध नगरी डरबन में एक व्याख्यान यूनिवर्सिटी कैम्पस में दिया था जिसका विषय था-

'The Linguistic Relevance of Sanskrit'

और उस समय वहाँ के वाइस चान्सलर जे. जे. सी. ग्रेलिंग (Prof. J.J.C. Greyling) थे, उससे कुछ ही वर्ष पूर्व प्रो. ओलिवियर डरबन यूनिवर्सिटी के और प्रो. ब्रोजोली विटवाटरेण्ड यूनिवर्सिटी के कुलपति थे। डरबन विश्वविद्यालय में मैंने यह कहा था कि वैदिक भाषा और संस्कृत का अध्ययन यूरोप के देशों में आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द से बहुत पूर्व आरम्भ हो गया था। सन् १६९९-१७३२ में एक ईसाई पादरी Hanxleden था जिसने पहली बार यूरोप की भाषा में संस्कृत व्याकरण की रचना की और पादरी Coeurdoux ने १७६८ में सम्भवतया यह विचार प्रस्तुत किया कि संस्कृत भाषा और यूरोप की भाषाओं में निकट का सम्बन्ध है।

दो वर्ष पूर्व में मॉरीशस गया था, वहाँ से एक पुस्तक लैटिन भाषा की लाया जिसका लेखक फ्रिडेरिसक रोजेन (Fridricus Rosen) था जो स्वयं जर्मन था और उसने एक पुस्तक लैटिन भाषा में धातु पाठ (Radices Sanseritae) १८२८ ई. में लिखी।

यूरोपवासियों की रुचि भारतीय साहित्य में उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। सर विलियम जोन्स प्रसिद्ध प्रथम पश्चिमी विद्वान् था जिसने भारतीय भाषाओं का सम्बन्ध यूरोप की भाषाओं से स्थापित किया। उसके पूर्व लोगों का विश्वास था कि संसार की भाषाओं का भेद ईश्वर ने उस समय पैदा किया जब बेबिलोनिया वाले स्वर्ग जाने के लिए ऊँची मीनार तैयार करने में लगे थे। उस समय ईश्वर को एक ही उपाय सूझा-भाषा में भेद कर देना। पश्चिमी विद्वानों में संस्कृत साहित्य का निर्देश करने वाला एक विख्यात व्यक्ति सर विलियम जोन्स था। वह १७८३-८४ में भारतवर्ष आया। वह उर्दू, अरबी, फारसी एवं तुर्की भाषाओं से परिचित था और उसने यूरोप के लोगों को स्पष्ट बताया कि बेबिलोनिया की मीनार से बहुत पहले भारत की एक भाषा रही है, जिसका नाम संस्कृत है। उसने पहले बंगाली का अध्ययन किया, फिर संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। १७८४ के प्रथम दिन ही उसने एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल की स्थापना की।

सर विलियम जोन्स एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल का प्रथम सभापति बना। मैं उस सारे इतिहास का वर्णन नहीं करना चाहता जिसने यूरोप में एक नयी क्रान्ति आरम्भ की और धीरे-धीरे संस्कृत और वैदिक साहित्य की ओर रुचि उत्पन्न की। शीघ्र ही बेबिलोनिया, फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि देशों में संस्कृत साहित्य का अध्ययन आरम्भ हो गया। इस रुचि के अभ्यन्तर में जो भावना थी वह केवल आचार्यत्व और विद्या प्रेम की थी न कि ईसाई धर्म के प्रचार की। मैक्समूलर के एक पत्र का बहुधा उल्लेख किया जाता है जिसके द्वारा उसने किसी को लिखा था कि यदि मेरे किये हुए ऋग्वेद के कुछ अंशों के अनुवाद को कोई पढ़ लेगा तो उसे पता चल जायेगा कि वेद और वैदिक भाषा असलियत में क्या है और तब शायद ईसाइयों को भारत में अपने धर्म के प्रसार में अधिक सहायता मिलेगी। हम सब जानते हैं कि अगर मैक्समूलर न होता तो ऋग्वेद का विशुद्ध संस्करण भी भारतीयों को न प्राप्त होता। इस संस्करण की पृष्ठभूमि में मैक्समूलर का कोई भी आशय धर्म प्रचारक का नहीं था। इसी रुचि से प्रेरित होकर ह्विटनी ने अथर्ववेद का संस्करण निकाला और उसने घोर परिश्रम इस वेद के प्रातिशाख्यों पर किया। केवल साहित्यिक रुचि इसका कारण थी। आप उनके अनुवाद को स्वीकार करें या न करें लेकिन ऐसी अनेक विभूतियाँ हुई हैं जिन्होंने निश्छल भाव से वैदिक साहित्य हमें देने का प्रयत्न किया।

वेदों के अनुवाद के अतिरिक्त यूरोपीय विद्वानों की वह एक अलग देन है जो आज हमें, उनके सम्पादित संस्करणों में, पद पाठों में, उनके कोशों में और उनके सन्दर्भ-ग्रन्थों में प्राप्त होती है।

राथ और बॉह् तालिंग्क (Roth & Bohtlingk) (१८५५) ने जर्मन भाषा में सात विशाल खण्डों में शब्दकोश प्रकाशित किये। आज भी इससे बड़ा कोश हमारे पास नहीं है। डॉ. मोनियर विलियम्स का जो संस्कृत अंग्रेजी कोश हम प्रतिदिन प्रयोग में लाते हैं, उसके समकक्ष आज भी कोई कोश भारतीयों का रचित नहीं है। मेरे पास एक पुस्तक 'A Vedic Concordance' नाम की है जिसके लेखक ब्लूमफील्ड (Bloomfield) हैं, जिसकी समकक्षता में विश्व साहित्य में हम किसी भी दूसरी पुस्तक को नहीं रख सकते। मैं जानता हूँ कि होशियारपुर के वी.वी.आर.आई. ने विश्वबन्धु जी की अध्यक्षता में बहुत से संदर्भ-कोश प्रकाशित किये थे। वे भी उनके परिश्रम व अध्यवसाय के सूचक हैं। यही नहीं, विश्वबन्धुजी के परिश्रम से अथर्ववेद का विस्तृत संस्करण सायणभाष्य से विभूषित तैयार हुआ। विदेशी विद्वानों की कृपा से हमें आज भी भारत से बाहर वैदिक साहित्य की विभिन्न पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हैं। क्या यह आश्चर्य नहीं है कि आर्यसमाज के विद्वानों ने इनमें से एक भी पाण्डुलिपि का दर्शन नहीं किया है। यह ठीक है कि

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

महर्षि दयानन्द ने निघण्टु और निरुक्त एवं उणादिकोष के आधार पर अनुवाद की एक नयी विद्या दी और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदों के सम्बन्ध में हमें नयी आस्थायें दी, इसका श्रेय आर्यसमाज एवं महर्षि दयानन्द को है। भारतीय जनता जिस वेद को भूल गयी थी और जिस वैदिक साहित्य का सम्पादन महीधर, सायण, उबट आदि आचार्यों ने किया उसका प्रचार इस युग में ऋषि दयानन्द ने सामान्य जनता में किया। आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य को भारत में और भारत से बाहर भी संध्या और अग्निहोत्र के माध्यम से वेद मन्त्रों का चातुर्वर्ण्य में प्रसार किया। आर्यसमाज के व्यक्तियों में केवल मन्त्र रटने की ही प्रथा नहीं है, जहाँ तक सम्भव है उनका अर्थ भी समझना चाहते हैं। वैदिक मन्त्रों की व्याख्या पर विविध अवसरों पर अनेक भाषण आर्यसमाज में सुनने को मिलेंगे।

आर्यसमाज के विद्वानों से मेरा आग्रह है कि यूरोपीय और अमरीकी वेदनिष्ठ विद्वानों को आदर की भावना से देखें। उन्होंने वेदों के संदर्भ में जो ग्रन्थ तैयार किये हैं वे सदा हमारे लिए आदर्श रहेंगे। इनकी हमें कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इन ग्रन्थों को यह नहीं समझना चाहिए कि यह ईसाइयों के हैं।

आर्यसमाज के विद्वानों ने वैदिक साहित्य पर विदेशी विद्वानों की तुलना में कुछ भी नहीं किया। विदेशियों ने जो सन्दर्भ ग्रन्थ तैयार किए हैं उनके बिना हमारा कभी भी काम नहीं चल सकता। आर्यसमाज के भारतीयों की यह अनुचित प्रवृत्ति हो गयी है कि वे अंग्रेजी नहीं पढ़ना चाहते। हो सकता है कि अंग्रेजी भाषा एक पीढ़ी बाद समाप्त हो जाए। आर्यसमाज के हित की दृष्टि से मेरा आग्रह है कि अंग्रेजी भाषा को अपने पठन-पाठन में उच्च स्थान दें। हमारा सौभाग्य रहा कि हम पिछले वर्षों में कम से कम अंग्रेजी पढ़-लिख तो सकते थे, किन्तु अब यह योग्यता बहुत कम होती जा रही है। मैं चाहता था कि मुझे अंग्रेजी के समान लैटिन और जर्मन भाषा भी आती होती। अगर यह दोनों भाषाएँ आतीं, तो वैदिक साहित्य से मेरा मूल परिचय होता। अब केवल अंग्रेजी के माध्यम से थोड़ा बहुत काम कर रहा हूँ। अमरीका के कारण अंग्रेजी बहुत समर्थ भाषा बन गई है। आर्यसमाज में कोई विशेष प्रबन्ध करना होगा कि वे अंग्रेजी भाषा को वैदिक साहित्य की सम्पन्न भाषा मानें। हमारे किसी भाष्यकार या आर्यसमाज के किसी विद्वान् ने वैदिक साहित्य की १७ वीं या १८ वीं शती की कोई हस्तलिपि नहीं देखी। मैं यह शब्द बड़े अनुभव और प्रेम से लिख रहा हूँ।-

ऋतम्भरा, विज्ञान परिषद्, प्रयाग, इलाहाबाद-२११००२

ध्यान प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर

२४ नवम्बर से १ दिसम्बर, २०१३, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर। अधिकतम संख्या-५०। मात्र पूर्व पञ्जीकृत प्रतिभागियों के लिए। इसमें विद्वद् गोष्ठी द्वारा निर्धारित आर्यसमाज की ध्यान पद्धति का प्रशिक्षण दिया जायेगा व ध्यान करवाने का अभ्यास भी करवाया जायेगा। लिखित एवं प्रायोगिक परीक्षा के बाद योग्य व्यक्तियों को परोपकारिणी सभा द्वारा प्रशिक्षक-प्रमाण पत्र भी दिये जायेंगे। शिविर शुल्क १००० रु. है। २४ नवम्बर सायं ४ बजे तक पहुँचना अनिवार्य है। विलम्ब से आने वालों की शिविर में सहभागिता नहीं हो पायेगी। शिविर का समापन १ दिसम्बर को सायं ५ बजे तक हो जायेगा। इच्छुक व्यक्ति, कृपया सम्पर्क करें-९४१४००३७५६, समय-मध्याह्न १.३० से २.३०।

पता-संयोजक, ध्यान प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर, परोपकारिणी सभा, दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर, राज. ३०५००१। ईमेल-psabhaa@gmail.com

भूल-सुधार

मई द्वितीय-२०१३ के पुस्तक-परिचय शीर्षक में, पृष्ठ-३६ पर बिन्दु संख्या-३ में प्रकाशक का पता भूलवश पूरा नहीं छप पाया है। अतः इसे इस प्रकार से पढ़ा जाए **प्रकाशक**-आचार्य विश्व बन्धु, मानव सेवार्थ न्यास, अलीपुर कलाँ, मुजफ्फरनगर। असुविधा के लिए हमें खेद है।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

पुस्तक-परिचय

१. नाम-उत्कृष्ट शंका समाधान, **प्रकाशक**-दर्शन योग महाविद्यालय, आर्य वन रोजड़, पत्रालय सागपुर, जिला-साबरकाण्ठा (गुजरात), पिन-३८३३०७, **मूल्य**-६५/- रुपए, **समाधानकर्त्ता**-स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक, **सम्पादक**-डॉ. राधा वल्लभ चौधरी, **पृष्ठ संख्या**-३४४

मनुष्य सर्वज्ञ नहीं है। वह पुस्तकों, सत्संगों व सी.डी. आदि के अतिरिक्त स्वचिन्तन से ज्ञान प्राप्त करता है परन्तु फिर भी कुछ शंकाएँ, उत्सुकताएँ, प्रश्न व जिज्ञासाएँ रहती ही हैं। आर्यसमाज से बाहर किसी भी संस्था में पाठकों श्रोताओं की जिज्ञासाओं व शंकाओं के समाधान नहीं किए जाते। आर्यसमाज में यह परम्परा महर्षि दयानन्द ने चलाई कि श्रोताओं को प्रश्न पूछने का अधिकार दिया जाए। इसका निर्वहन बाद के कई विद्वानों ने किया। इनमें पं. जगदेव सिंह सिद्धान्ती, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी रामेश्वरानन्द, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय व पं. रामचन्द्र देहलवी जैसे अनेकों विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं। वर्तमान में भी यह क्रम जारी है परन्तु आर्यसमाज में स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक प्रथम उपदेशक हैं जिनके समाधान विभिन्न विषयों पर एक ही ग्रन्थ में उपलब्ध हो रहे हैं।

इससे पूर्व वानप्रस्थ साधक आश्रम, गुजरात ने इसका प्रथम खण्ड प्रकाशित करने का स्तुत्य कार्य किया था व हमें विश्वास है कि तीसरा खण्ड भी शीघ्र सुधी जनों के हाथों में आएगा। ऐसे ग्रन्थ अवैदिक सम्प्रदायी संस्थाओं के यहाँ होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। आर्यसमाज में भी लगभग अनुपलब्ध ही हैं। ऐसे ग्रन्थ पाठकों, श्रोताओं व शिविरार्थियों की मानसिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक उन्नति में अधिक सहायक हो सकते हैं, विशेषत: उनके लिए जो योग मार्ग के पथिक बनकर आगे बढ़ना चाहते हैं व सच्चे ईश्वर की सच्ची व्यवस्था को समझना चाहते हैं। दर्शन योग महाविद्यालय के अतिरिक्त भी ग्रन्थ १४ अन्य स्थानों से प्राप्त किया जा सकता है जिनमें ऋषि उद्यान अजमेर, आर्य प्रकाशन दिल्ली, गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली व कुछ गुरुकुलों, आर्यसमाजों व व्यक्तियों के नाम व पते ग्रन्थ में दिये गए हैं।

ग्रन्थ में २६३ लौकिक व पारलौकिक प्रश्नों के दार्शनिक, प्रामाणिक, सटीक व युक्तियुक्त उत्तर प्रकाशित हैं जो मन व मस्तिष्क को आन्दोलित करने में पूर्णत: सक्षम हैं। ग्रन्थ का कागज व सम्पादन उत्कृष्ट है परन्तु मुद्रण-दोष से रहित नहीं है। मूल्य न्यून ही है। भाषा की सरलता के नाम पर कुछ नये प्रयोग किये गए हैं, जिन पर मतभेद की संभावना है।

-इन्द्रजित् देव, चूना भट्ठियाँ, यमुनानगर, हरियाणा।

२. नाम-सत्यार्थप्रकाश (संस्कृत श्लोक और हिन्दी अनुवाद सहित), **संस्कृतश्लोानुवादक**-आचार्य डॉ. धर्मवीर (कुण्डू), **प्रकाशक**-अभिषेक प्रकाशन, जे.डी-१८ सी, द्वितीय तल, क्रिस्टल अपार्टमेन्ट, पीतमपुरा, दिल्ली-११००८८, **पृष्ठ**-५७६, **मूल्य**-५००/-रू.

महर्षि दयानन्द के प्रत्येक ग्रन्थ में वैशिष्ट्य है किन्तु सभी ग्रन्थों में सत्यार्थप्रकाश विशेष वैशिष्ट्य रखता है। इस ग्रन्थ को पढ़कर सहस्रों के जीवन में सुगन्ध आयी और उन्होंने दूसरों के जीवन को सुगन्धित किया। जिस समय गांधी जी ने सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज पर अपनी ओछी टिप्पणी की, उस समय वीर सावरकर ने यह कहकर कि 'इस हिन्दू जाति की रगों में ठण्डे पड़े खून को गर्म करने वाली पुस्तक सत्यार्थप्रकाश है।'' करारा जवाब दिया। रामप्रसाद बिस्मिल अपनी आत्मकथा में लिखते हैं ''...........मैंने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा। इससे तख्ता ही पलट गया। सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया।'' भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई में भाग लेने वाला लगभग प्रत्येक क्रान्तिकारी आर्यसमाज व सत्यार्थप्रकाश से प्रभावित था। केवल भारतीय ही नहीं विदेशी भी ऋषि से प्रभावित रहे। जो मैक्समूलर ऋषि दयानन्द की ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पढ़कर वेदों के विषय में अपनी धारण बदलता है। इस विषय में उनके बदले विचारों को जानने के लिए उनकी पुस्तक 'भारत की विश्व को देन' पठनीय है।

आर्यों ने महर्षि के सत्यार्थप्रकाश को लगभग २२ भाषाओं में अनुवादित कर विश्व को पढ़ने के लिए दिया। विभिन्न भाषाओं की शृंखला में सत्यार्थप्रकाश संस्कृत में भी प्रकाशित हुआ, उसका संस्कृतज्ञों ने आनन्द लिया। उसी शृंखला में विद्वान् आचार्य डॉ. धर्मवीर 'कुण्डू' ने सत्यार्थप्रकाश को पहली बार अनुष्टुप छन्द युक्त श्लोकों मे रचनाकर, उनका अनुवाद वही महर्षि की भाषा में रख प्रशंसा का कार्य किया है। आर्ष शैली के अनुसार श्लोक बड़े ही सरल व हृदयग्राह्य हैं। जैसे कुछ लोग गीता आदि ग्रन्थ कण्ठ कर लेते हैं, इसी प्रकार यदि कोई सत्यार्थप्रकाश कण्ठ करना चाहे तो वह इन सरल श्लोकों के माध्यम से कर सकता है।

पुंसां यद्यपि सर्वेषां हृदयं किल सर्वथा।
सत्यासत्ये विजनीते तथापि स्वार्थसिद्धये।।
दूराग्रहरविद्यादि दोषैः समाहितस्तदा।
अपहाय च सत्यमसत्योन्मुखं विजायते।।

मनुष्य का आत्मा सत्य-असत्य को जानने वाला है तथापि प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

आर्यावर्ते दूशस्देश: वर्तते भूविमण्डले।
नान्य: कोऽपि च यत्तुल्य: देशोऽस्ति दूश्यते क्वचित्।।

यह आर्यावर्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई नहीं।

अयमेव सुवर्णादिरत्नानि प्रसूते यत:।
तेन सौवर्णमयी भूमि सत्येवाभिधीयते।।

इसलिए इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है क्योंकि यही सुवार्णादिरत्नों को उत्पन्न करती है।

इस प्रकार विद्वान् कवि ने महर्षि के भावों को श्लोकबद्ध किया है। विद्वान् पाठक इस पुस्तक का लाभ उठावें। यह पुस्तक प्रत्येक गुरुकुल संस्था व पुस्तकालयों में रखने योग्य है।

-सोमदेव, ऋषि उद्यान, अजमेर।

।।ओ३म्।।

अलग-अलग स्तरों में योग-साधना शिविर

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि-उद्यान, अजमेर में वर्षों से अब तक योग्य आचार्यों द्वारा योग-साधकों का निर्माण करने के लिए वर्ष में दो बार योग से सम्बन्धित व ध्यान से सम्बन्धित शिविरों का आयोजन किया जाता रहा है और साधकों के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयास किया जाता रहा है। समाज में और अधिक योग्य व आदर्श साधकों की आवश्यकता अनुभव करते हुए इस वर्ष जून मास के शिविर में नवीन पाठ्यक्रम की विधि अपनाकर इस दिशा में एक नया मोड़ दिया गया है।

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान में आयोजित १६ से २३ जून २०१३ को योग-साधना शिविर (प्राथमिक स्तर) लगाया गया। यह शिविर ध्यान से सम्बन्धित, ईश्वर-जीव-प्रकृति के वास्तविक स्वरूप को जानने से सम्बन्धित, योगदर्शन व सांख्यदर्शन के कुछ प्रमुख विषयों के सूत्रों के माध्यम से प्राथमिक स्तर पर योगदर्शन व सांख्यदर्शन को जानने-समझने से सम्बन्धित, आत्मनिरीक्षण में कुछ नये विषयों को सूक्ष्मता से समझने से सम्बन्धित, दिनचर्या को अनुशासित व सात्त्विक बनाने से सम्बन्धित तथा विभिन्न सैद्धान्तिक व व्यावहारिक विषयों के ज्ञान से सम्बन्धित प्रारम्भिक स्तर के योग के इच्छुक साधकों के लिए लगाया गया। इस योग-साधना शिविर को आगामी वर्षों में चतुर्थ स्तर तक लगाने की योजना बनाई गई है। प्रारम्भिक स्तर से लेकर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्तर तक के शिविरों में पूर्व सूचित पाठ्यक्रमित विषयों में अधिक से अधिक सूक्ष्मता, दिनचर्या में और अधिक अनुशासन व सात्त्विकता, आहार-शुद्धि से लेकर मन, आत्मा की शुद्धि पर्यन्त अनुभवात्मक स्तर पर योग-साधकों को ज्ञान करवाया जाएगा। प्रत्येक स्तर के साधकों को उनके सैद्धान्तिक व व्यावहारिक ज्ञान से सम्बन्धित तथा उनके व्यक्तिगत आचरण व अनुशासन को दृष्टि में रखते हुए परीक्षा-पद्धति के माध्यम से प्रथम-श्रेणी व उच्च प्रथम-श्रेणी के प्रमाण-पत्र दिए जायेंगे। इस प्रकार की विधि से योग्य साधकों को समाज में सम्मान मिलेगा तथा वे और अधिक उत्साह से समाज व देश के कल्याण के लिए कार्यरत होंगे, उन्हें देखकर अन्य साधक भी प्रेरित होंगे।

परोपकारिणी सभा व गुरुकुल ऋषि उद्यान के योग्य आचार्यों व संयोजकों द्वारा नवनिर्मित इस योजना के प्राथमिक स्तर में पर्याप्त उपलब्धि हुई है। भविष्य में इस योजना में आप सब के सहयोग की आवश्यकता है। अगला शिविर दिनांक २० से २७ अक्टूबर।

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

१. २० से २७ अक्टूबर-**योग-साधना शिविर प्राथमिक स्तर**, सम्पर्क : ०१४५-२४६०१६४

२. २४ नवम्बर से १ दिसम्बर तक **ध्यान प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर**, सम्पर्क : ०९४१४००३७५६, समय : मध्याह्न १.३० से २.३० बजे।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

संस्था-समाचार

-१ से १५ जून २०१३

१. पौध निर्माण-जैसा कि विदित है महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा समाज के लिए नई पौध-आर्य नवयुवकों व नवयुवतियों के चरित्र निर्माण हेतु कृतसंकल्प है। इसके लिए ऋषि उद्यान में आर्यवीर व आर्य वीरांगना शिक्षक-शिक्षिकाएँ सदैव समुपस्थित हैं तथा अपने प्रचार कार्यक्रम को निरन्तर गति दे रहे हैं। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष ग्रीष्मावकाश में छात्र-छात्राओं के लिए पृथक्-पृथक् चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन किया जाता है।

दिनांक २८ मई से ०४ जून तक ऋषि उद्यान परिसर में आर्यवीर दल का छात्रों के लिए चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें राजस्थान के लगभग ११ जिलों से व मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा महाराष्ट्र से लगभग १४५ शिविरार्थी पधारे। बच्चों को बौद्धिक कक्षाओं में स्वामी विष्वङ् जी, आचार्य सत्येन्द्र जी, आचार्य सोमदेव जी, डॉ. दिनेशचन्द्र जी शर्मा (उपकुल सचिव, म.द.स. विश्व., अजमेर), डॉ. मृत्युंजय शर्मा, डॉ. चन्द्रकान्त चतुर्वेदी, श्रीमान् वासुदेव देवनानी (विधायक, उत्तरी क्षेत्र, अजमेर), डी. आई. जी. रामगोपाल जी भट्ट (जी.सी. २, सी. आर. पी. एफ. अजमेर), श्रीमान् चैनसिंह जी पंवार (आर.ए.एस. अधिकारी) आदि का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। शारीरिक प्रशिक्षण हेतु-श्री यतीन्द्र जी, सुनील जोशी, दिनेश कुमार (उदयपुर), जितेन्द्र आर्य, कमलेश पुरोहित, हिम्मतसिंह शेखावत, दिनेश चौधरी, शिवपाल चौधरी, संजय आर्य, रवि शर्मा आदि का निर्देशन प्राप्त हुआ। इस शिविर में छात्रों को शारीरिक व्यायाम के साथ-साथ संगीत, चित्रकला, हस्तलेखन आदि का भी प्रशिक्षण दिया गया तथा उस-उस विषय की परीक्षा भी ली गई, सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाले छात्रों को समापन समारोह में गणमान्य नागरिकों की समुपस्थिति में पुरस्कृत किया गया। समापन समारोह में इन आर्यवीरों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न शारीरिक प्रदर्शन ने सभी का ध्यान अपनी ओर खींच लिया।

इसी क्रम में दिनाँक ६ से १३ जून तक आर्य वीरांगना शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें राजस्थान के अजमेर, भीलवाड़ा, जोधपुर, निम्बाहेड़ा, नागौर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, प्रतापगढ़, सीकर, भरतपुर, उदयपुर, जयपुर आदि जिलों से तथा दिल्ली, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश व पंजाब से लगभग ११० छात्राएँ पधारी। शिविर में मुख्य व्यायाम शिक्षक यतीन्द्र आर्य, श्वेता आर्या, ममता आर्या आदि ने छात्राओं को आत्मरक्षा के लिए जूडो-कराटे, लाठी, भाला, तलवार, चाकू आदि चलाने का प्रशिक्षण प्रदान किया। वहीं बौद्धिक के अन्तर्गत यज्ञ, संध्या, धर्म व चरित्र निर्माण से संबंधित अनेकों विषय पर उद्बोधन प्रदान किया गया। मुख्य वक्ताओं में स्वामी विष्वङ्, डॉ. धर्मवीर जी, आचार्य सोमदेव, डॉ. चन्द्रकान्त चतुर्वेदी, डॉ. मृत्युंजय शर्मा, श्रीमती अनिता भदेल (विधायक, अजमेर) आदि समुपस्थित थे।

२. डॉ. धर्मवीर जी का प्रचार कार्यक्रम-(क) सम्पन्न कार्यक्रम-**१.** २९ मई से ४ जून गोरखपुर (उ.प्र.) की कई आर्यसमाजों में प्रवचन। **२.** ४-५ जून-राजकोट आर्यसमाज में प्रवचन। **(ख) आगामी कार्यक्रम**-**१.** २७ से ३० जून-'आर्यसमाज की यज्ञ पद्धति' विषयक तृतीय गोष्ठी में भाग लेंगे (आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, नर्मदापुरम, होशंगाबाद, म.प्र.) **२.** ६ जुलाई-डोंगण आर्यसमाज, रेवाड़ी, हरियाणा के उत्सव में प्रवचन, **३.** ७ जुलाई-राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा, के चुनावों में भाग लेने हेतु जयपुर में, **४.** १२-१४ जुलाई-औरंगाबाद, महाराष्ट्र की आर्यसमाज में प्रवचन कार्यक्रम, **५.** २६-२८ जुलाई-बैंगलोर में प्रवचन का कार्यक्रम, **६.** ९-११ अगस्त-बिलासपुर (छ.ग.) में प्रवचन कार्यक्रम, **७.** २१-२९ अगस्त-श्रावणी पर्व के उपलक्ष्य में भुवनेश्वर उड़ीसा में व्याख्यान।

३. आचार्य सोमदेव का प्रचार कार्यक्रम-**१.** २ जून-हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा रोहतक के मासिक सत्संग में मुख्य वक्ता, **२.** ३ जून-आर्यसमाज गाहड़ा, महेन्द्रगढ़ के वार्षिकोत्सव पर प्रवचन, **३.** ९-११ जून-आर्यसमाज ग्वालियर के वार्षिकोत्सव में प्रवचन, **४.** १२-१६ जून-मलारना चोड़, सवाई माधोपुर में सामवेद परायण यज्ञ के ब्रह्मा व कार्यक्रम के मुख्य वक्ता। रात्रिकालीन शंका-समाधान की कक्षा में लगभग ५००० श्रोताओं की शंकाओं का समाधान।

४. पं. नौबतराम वानप्रस्थ का प्रचार कार्यक्रम-परोपकारिणी सभा द्वारा वेद प्रचार एवं जन सम्पर्क यात्रा, चलता-फिरता आर्यसमाज पं. नौबतराम वानप्रस्थ द्वारा १ मई को जयपुर में, २-३ मई चुरु में, ४ मई को तारानगर में, ५ मई को श्री अशोक कुमार जी हरचन्दानी व श्री भूदेव आर्य से सरदार शहर में सम्पर्क, ७ से १४ मई तक आर्यसमाज सुजानगढ़ को केन्द्र बनाकर आर्यजनों के परिवार में यज्ञ-सत्संग का कार्यक्रम। चुरु, सीकर, अजमेर होते हुए आप १६ मई को पाली आर्यसमाज में पहुँचे, वहाँ प्रवचन। पुन: वहाँ से आबूरोड़, आबू पर्वत गुरुकुल पहुँचे। आबू पर्वत से पाली, मारवाड़ होते हुए उदयपुर, नवलखा महल पहुँचे। इस प्रकार सत्संग यज्ञ-भजनों द्वारा ऋषि सन्देशों को जन-जन पहुँचाते हुए वापस ऋषि उद्यान पधारे।

५. यज्ञ एवं प्रवचन-जैसा कि विदित है ऋषि उद्यान

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

आर्यजगत के उन स्थानों में से है जहाँ पूरे वर्ष दोनों समय अपरिहार्य रूप से यज्ञ एवं प्रवचन का कार्यक्रम होता है। प्रात:काल यज्ञोपरान्त वेद के कुछ मन्त्रों का पाठ तथा पूर्व निर्धारित मन्त्र का महर्षि दयानन्द कृत भाष्य का स्वाध्याय किया जाता है। प्रात: प्रवचन के क्रम में सामान्य दिनों में डॉ. धर्मवीर जी जहाँ पुरुषसूक्त (यजुर्वेद का ३१ वाँ अध्याय) पर व्याख्यान करते हैं वहीं स्वामी विष्वङ् जी अपने योगदर्शन के क्रम को आगे बढ़ाते हैं तथा सायं सत्संग में आचार्य सोमदेव जी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का तथा आचार्य सत्येन्द्र जी व्यवहारभानु आदि ग्रन्थों का क्रमश: स्वाध्याय कराते हैं।

१ से ७ जून के अपने प्रवचन क्रम में स्वामी विष्वङ् जी ने योगदर्शन के तृतीय पाद के ३५ वें, ३६ वें, ३७ वें सूत्र की सरल व्याख्या प्रस्तुत की। ३५ वें सूत्र की व्याख्या में आपने बताया कि चित्त और पुरुष (जीवात्मा) यद्यपि अत्यन्त भिन्न है (परस्पर बिल्कुल अलग है) तथापि उनकी इस प्रतीति का होना, उन दोनों को एक समझना भोग कहलाता है। खीर या कोई प्रिय वस्तु खाते समय, यह पदार्थ मुझ आत्मा को पोषण दे रहा है या बढ़ा रहा है यह ज्ञान भोग है। पुन: भोग होने के कारण प्रिय वस्तु की प्राप्ति पर सुख, अप्राप्ति पर दु:ख तथा अप्रिय की अप्राप्ति पर सुख व प्राप्ति में दु:ख होता है। योगी इन सुख-दु:खों से परे होता है। सुख-दु:ख से परे रहने पर भी वह शरीर के पोषण आदि के लिए सर्वश्रेष्ठ वस्तु का ग्रहण करता है। किन्तु ऐसा करने पर भी ज्ञान में शुद्धता होने के कारण उसका भोग नहीं होता है।

जब योगी बुद्धिवस्तु से भिन्न चैतन्य मात्र स्वरूप पुरुषत्व में संयम (धारणा, ध्यान, समाधि) लगाता है तो उसे स्वयं, आत्मा का ज्ञान होता है।

सूत्र ३६ की व्याख्या करते हुए आपने बताया कि पिछले सूत्र में उल्लेखित आत्मतत्त्व के बोध से योगी को प्रातिभ, श्रावण, वेदन, आदर्श, आस्वाद और वार्ता नामक छह सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। प्रातिभ सिद्धि से योगी सूक्ष्म, व्यवहित (किसी व्यवधान से छिपी हुई), विप्रकृष्ट (दूरस्थ), अतीत (बीते समय की) और अनागत वस्तुओं को जान लेता है। यहाँ ध्यातव्य है कि सूत्र २५ वें में भी मन की ज्योतिष्मती प्रवृत्ति में संयम करने से सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट वस्तुओं को जान लेता है। इन दोनों सिद्धियों में मुख्य अंतर यह है कि सूत्र ३/२५ में उल्लेखित सिद्धि, इस सूत्र में उल्लेखित सिद्धि की अपेक्षा निम्न कोटि की है। उस सिद्धि में तत्-तत् वस्तु का ज्ञान करने के लिए मन को सयास वहाँ ले जाना पड़ता, यहाँ अनायास ही विषय के उपस्थित होने पर उनका ज्ञान उत्पनन होने लगता है। इसी प्रकार श्रावण सिद्धि से श्रवणेन्द्रिय में दिव्य श्रवण का सामर्थ्य, वेदन सिद्धि में त्वचा इन्द्रिय में दिव्य स्पर्श की प्राप्ति करने का सामर्थ्य, आस्वाद सिद्धि से रसनेन्द्रिय से दिव्य रस को ग्रहण करने का सामर्थ्य, आदर्श सिद्धि से नेत्रेन्द्रिय में तथा वार्ता सिद्धि से कर्णेन्द्रिय में दिव्य शब्द को सुनने का सामर्थ्य आ जाता है।

अगले सूत्र की व्याख्या में बताया गया कि ये प्रातिभादि सिद्धियाँ स्थिर चित्त वाले पुरुष की चित्तवृत्ति निरोध दशा में बाधक है। क्योंकि इन सिद्धियों के प्राप्त होने पर चित्त की व्युत्थान दशा में योगी जहाँ स्वयं विषयाकृष्ट हो सकता है वहाँ उसके इस योगज चमत्कार से दूसरे सामान्य पुरुष प्रभावित होकर उसके पीछे लग सकते हैं और वह योगी जादूगर की भाँति बन सकता है। यह स्थिति योगी के लिए अत्यन्त भयानक है, क्योंकि लोक में होने वाली प्रतिष्ठा तथा दूसरे व्यक्तियों की उसके प्रति श्रद्धा योगाभ्यासी पुरुष को समाधि से गिराने के लिए प्रबल विघ्न हो जाते हैं।

६ जून को आर्य वीरांगना शिविर के प्रारम्भिक दिन स्वामी जी ने समय की और अनुशासन की महत्ता पर बल देते हुए बताया कि हमें समय के रहते हुए ही सावधान होकर अवसर का लाभ उठा लेना चाहिए और जो व्यक्ति स्वयं को अनुशासन में नहीं रख सकता वह दूसरों को भी अनुशासन में नहीं चला सककता।

८ जून को अपने प्रवचन क्रम में सभा के कार्यकारी प्रधान डॉ. धर्मवीर जी ने सामान्य चर्चा करते हुए यज्ञ प्रेमी सज्जनों को बताया कि मर्यादा का जीवन में कितना अधिक महत्त्व है। आज के कुछ प्रगतिशील व्यक्ति मर्यादाओं को बन्धन बताकर उसे हटाने पर जोर देते हैं जिसका दुष्परिणाम हम भोग रहे हैं। ऋग्वेद १०/५/६ मन्त्र का उद्धरण देते हुए आपने बताया कि यहाँ सात मर्यादाओं का उल्लेख है, इन सात मर्यादाओं की गणना करते हुए निरुक्तकार बताते हैं कि स्तेय=चोरी करना, व्यभिचार करना, विद्वानों की हत्या, भ्रूण हत्या, सुरापान, दुष्कृत कर्म की आवृत्ति व पातक कर्म करके झूठ बोलना, ये सात मर्यादाएँ हैं, जिनका कभी भी किसी मनुष्य के द्वारा उल्लंघन नहीं होना चाहिए, नहीं तो समाज में अनर्थ होगा। आप स्वतंत्रता हनन की दुहाई देकर इन मर्यादाओं को हटा सकते हैं, लेकिन उस स्वतन्त्रता की सीमा क्या हो सकती है, अर्थात् कोई सीमा नहीं हो सकती।

सायंकालीन ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका प्रवचन क्रम में आचार्य श्री सोमदेव जी ने मुक्ति विषय में बताया कि जो लोग अपनी आत्मादि द्रव्यों की दक्षिणा परमेश्वर को देते हैं और उसकी मित्रता से अलग नहीं होते उन्हीं के लिए मोक्ष का विधान परमेश्वर करता है।

आगे नौविमानादिविद्या के विषय में प्रकाश डालते हुए बताया कि सारे भू-मण्डल में विद्या का प्रसार यहीं आर्यावर्त से हुआ और पुन: इस विद्या को सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द जी ने

शेष पृष्ठ ४२ पर............

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

आर्यजगत् के समाचार

१. आर्यसमाज चौक, प्रयाग, इलाहाबाद-आर्यसमाज चौक प्रयाग का वेदप्रचार सप्ताह वेद महोत्सव के रूप में दिनाङ्क २१ से २८ अगस्त २०१३ तक नये रूप में भव्य कार्यक्रमों वेदपारायण यज्ञ, वेद कथा तथा भजनोपदेश के माध्यम से सम्पन्न होगा। जिसमें आर्यजगत के शीर्ष लेखक उत्साही वक्ता जिज्ञासु जी अबोहर, श्री पं. नेमप्रकाश जी प्रसिद्ध भजनोपदेशक जौनपुर, श्री पं. गिरिराज आर्य की स्वीकृति प्राप्त हो गई है।

२. आर्यसमाज सैक्टर-९, पंचकूला की साधारण सभा दिनांक २६ मई २०१३ द्वारा वर्ष २०१३-१४ के लिए पदाधिकारियों का चुनाव सम्पन्न हुआ। इसमें श्री धर्मवीर बतरा, सर्वसम्मति से प्रधान पद के लिए निर्वाचित हुए और सभी आर्य सभासदों ने प्रधान जी को अंतरंग सभा का गठन करने का अधिकार दिया। श्री धर्मवीर बतरा, प्रधान द्वारा अंतरंग सभा का गठन किया गया।

३. शनि अमावस्या पर 'यज्ञ' आयोजित-जयपुर ९ जून, **सीनियर सिटीजन्स फोरम** द्वारा एस.एफ.एस. अग्रवाल फारम स्थित डे केयर सैन्टर पर शनि अमावस्या पर विशेष यज्ञ आयोजित किया।

'यज्ञ' के ब्रह्मा वैदिक प्रवक्ता यशपाल 'यश' ने आर्यसमाजी पद्धति से 'यज्ञ' सम्पन्न कराया। फोरम अध्यक्ष के.एम. रामनानी के अनुसार 'यज्ञ' के मुख्य यजमान लोटस डेयरी ग्रुप के चेयरमैन डी.डी. वर्मा रहे। बढ़ी संख्या में स्त्री-पुरुषों ने आहुतियाँ डाली।

४. आर्यसमाज सलेमपुर, जनपद, सहारनपुर बेहट रोड़ ग्राम तेलीपुरा में आज दो दिवसीय स्थापना उत्सव बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हो गया। इस विशाल कार्यक्रम का शुभारम्भ बारुराम शर्मा के पौरोहित्य में यज्ञ से हुआ। मनीराम, प्रदीप एवं मनीष, अमित सपत्नीक यज्ञमान रहे।

स्वामी रामेश्वरान्द्र सरस्वती द्वारा ओ३म् का ध्वज फहराकर आर्यसमाज तेलीपुरा इकाई की आधारशिला रखी। शोभा यात्रा में घोड़ों, मोटर साईकिलों, ट्रैक्टर, ट्रॉलियों तथा पैदल चलकर ग्रामीण व नगरीय अंचल के हजारों नर-नारियों ने पूरे ग्राम का परिभ्रमण कर महर्षि दयानन्द का संदेश घर-घर पहुँचाया। बैनर, तोरण द्वारों व ओ३म् के झण्डे से गाँव को भव्य तरीके से सजाया गया।

चुनाव-समाचार

५. आर्यसमाज बीकानेर-महर्षि दयानन्द मार्ग स्थित नगर आर्यसमाज के **प्रधान** श्री शम्भू राम यादव, वरिष्ठ अधिवक्ता ने कार्यकारिणी की घोषणा की जिसमें **मन्त्री**-श्री महेश सोनी, **कोषाध्यक्ष**-श्री नरसिंह आर्य, **पुस्तकालयाध्यक्ष**-श्रीमती लक्ष्मी स्वर्णकार चुने गये।

६. आर्यसमाज पूंजला नयापुरा, जोधपुर के वार्षिक चुनाव दिनांक २६.५.२०१३ को सम्पन्न हुए इसमें **प्रधान**-भीकमसिंह गहलोत, **उपप्रधान**-प्रेमसिंह साँखला, **मन्त्री**-जयसिंह भाटी, **उपमन्त्री**-हुकमसिंह साँखला, **कोषाध्यक्ष**-ब्रह्मसिंह परिहार को सर्वसम्मति से चुना गया।

७. आर्यसमाज पटेल नगर, गुड़गाँव, हरियाणा के वार्षिक चुनाव में **प्रधान**-पदमचन्द आर्य, **उपप्रधान**-दिनेश आर्य, **महामन्त्री**-ईश्वर सिंह दहिया, **मन्त्राणी**-निर्मला चौधरी, **कोषाध्यक्ष**-वेदप्रकाश मनचन्दा को सर्वसम्मति से चुना गया।

८. आर्यसमाज मण्डी बांस मुरादाबाद के वार्षिक चुनाव में **प्रधान**-निर्मल कुमार रस्तोगी, **मन्त्री**-घनश्याम दास, **कोषाध्यक्ष**-मनोज कुमार रस्तोगी को चुना गया।

९. आर्यसमाज नकुड़, सहारनपुर, उ.प्र. के वार्षिक चुनाव में **प्रधान**-अमरीश कुमार गोयल, **मन्त्री**-भूपेन्द्र कुमार आर्य, **कोषाध्यक्ष**-डॉ. शिवकुमार को चुना गया।

१०. आर्यसमाज, दयानन्द नगर, गाजियाबाद के २०१३-१४ के वार्षिक निर्वाचन में **प्रधान**-रामेश्वर दयालु गुप्त, **मन्त्री**-कैलाश चन्द्र अरोड़ा, **कोषाध्यक्ष**-ज्ञान प्रकाश जिन्दल, **भंडाराध्यक्ष**-रमा गुप्ता का चुनाव किया गया।

शोक-समाचार

११. शोक समाचार-मास्टर खजानसिंह आर्य का निधन-दैनिक हरिभूमि के प्रधान सम्पादक डॉ. कुलवीर छिक्कारा के पिता **मा. खजानसिंह आर्य** ग्राम जुवाँ जिला-सोनीपत का हृदयगति रुकने से ९ जून को निधन हो गया। उनकी उम्र ७५ वर्ष थी। वे आर्यसमाज के स्तम्भ थे। उन्होंने अपनी गाँव की भूमि में गुरुकुल तथा आर्यसमाज की स्थापना करवाई थी। प्रत्येक वर्ष वैदिक विद्वानों को बुलाकर आर्यसमाज का प्रचार करवाते थे। वे जहाँ भी रहते आर्यसमाज की ही बात करते थे। प्रतिदिन हवन-यज्ञ के पश्चात् अपनी दिनचर्या शुरू करते थे। वे अपने पीछे अपनी पत्नी रामकौर, इकलौते पुत्र दैनिक हरिभूमि के सम्पादक डॉ. कुलवीर छिक्कारा, पुत्री डॉ. सुदेश सहित भरा-पूरा परिवार छोड़ गए हैं। उन्होंने दिल्ली प्रशासन में शारीरिक अध्यापक के रूप में सेवा की। उनके निधन से आर्यसमाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

उनका दाह-संस्कार पूर्णतया वैदिक रीति से ग्राम जुवाँ में किया गया। दाह-संस्कार में आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के संरक्षक एवं सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के प्रधान आचार्य बलदेव जी, स्वामी रामदेव जी, बीजेपी के राष्ट्रीय प्रवक्ता कै. अभिमन्यु, मेजर सतपाल सिन्धु, पूर्व विधायक श्री ओमप्रकाश बेरी, राजीव जैन, विधायक बिजेन्द्रसिंह, जितेन्द्र छिक्कारा, डॉ. महासिंह पूनिया, सुभाष श्योराण, रणवीर छिल्लर के अतिरिक्त हरिभूमि परिवार के सदस्य एवं भारी संख्या में ग्रामवासी सम्मिलित हुए।

परोपकारिणी सभा उनके आकस्मिक निधन पर शोक व्यक्त करती है। परमपिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे तथा परिवार को इस विकट दु:ख को सहन करने की शक्ति देवें। उनकी शोक-सभा २० जून २०१३ को उनके निवास स्थान सैक्टर-३, म.नं. १३९४ में होगी। ❋

संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि

-सत्यदेव प्रसाद आर्य 'मरुत'

प्रकाश सभी को अवसर देता,
समझो बूझो और करो।

दूर-दूर तक देखो सब कुछ,
अच्छाई का वरण करो॥

लाभ उठाओ खुद-दूजों को,
आगे बढ़ने में मदद करो॥

दीप बुझा मत करो अन्धेरा,
न-नासमझी में डूब मरो॥

यह प्रकाश और समझ-बूझ,
आदि सृष्टि में प्रभु ने दी॥

मत-मजहब और पंथ बनाकर,
हमने बुद्धि बन्जर कर ली॥

श्रुति-वेद चलने का पथ है,
सुसंस्कृत कर देता जीवन॥

उहापोह मिट जाए मन के,
छूटे-अज्ञान भय द्वेष मरण॥

-आर्यसमाज मन्दिर, नेमदार गंज (नवादा)
बिहार-८०५१२१

संस्था-समाचार, पृष्ठ-४० का शेष........................

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखा। ऋग्वेद के मन्त्रों के माध्यम से बताया कि सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, लोहा, लकड़ी, अग्नि, वायु और जल आदि का यथावत् प्रयोग से नाव, विमान और रथ का निर्माण कर मनुष्य अपने प्रयोजनों को सिद्ध करें। आचार्य सत्येन्द्र जी द्वारा व्यवहारभानु के क्रम में बताया गया कि यदि माता-पिता बच्चों को चोरी, मिथ्या भाषण, लड़ाई-झगड़ा आदि कर्म करने का उपदेश करें तो बच्चों को ऐसे उपदेशों को न मानने का विनम्रता से निवेदन करना चाहिये।

ब्रह्मचारियों के प्रवचन क्रम में ब्र. सत्यव्रत आर्य जी ने गाय की महिमा के बारे में बताया कि गाय निरुपमय होती है। गाय से भूमि प्रदूषण से रक्षा व नमी क्षमता, उर्वरक, शीत उत्पादक तत्वों की वृद्धि होती है।

ब्र. रविशंकर आर्य ने अपने प्रवचन में बताया कि व्यक्ति जब लक्ष्य बनाकर चहता है तो मार्ग में कठिनाइयाँ, रुकावटें, अभाव प्रतिकूलताएँ आती हैं या तो वह इनको देखकर रुक जाए नहीं तो वह इन्हें एक अवसर समझकर अपनी कमजोरियों को ताकत में परिवर्तित कर सकता है।

ब्र. गोविन्द आर्य जी ने ''मानव मस्तिष्क बहुत अच्छा सेवक और बहुत बुरा मालिक'' इस विषय को गीता के श्लोकों के माध्यम से बताया। जब व्यक्ति क्रोध करता है तो स्मृति के नष्ट होने से बुद्धि बिगड़ जाती है लेकिन जब वह साधना से अपने मन को शान्त करता है तो बड़े-बड़े कार्य में सक्षम हो जाता है। **-ब्र. रविशंकर व दीपक आर्य।**

बच्चे और मोबाइल के दुष्प्रभाव

बच्चों का अपने मोबाइल से बहुत ज्यादा लगाव उनके निजी सम्बन्धों को कमजोर कर रहा है। एक अध्ययन के अनुसार युवा-वर्ग हर-रोज ६० बार से ज्यादा बार मोबाइल चैक करता है। विशेषज्ञों ने कहा कि युवा-वर्ग में मोबाइल पर मैसेज चैक करने की लत बढ़ती ही जा रही है। डॉ. जैम्स रॉबर्ट्स ने कहा कि स्कूली बच्चों के लिए यह चीज काफी नुकसानदेह है। वे अक्सर सात-सात घन्टे तक मोबाइल पर व्यस्त रहते हैं। डॉ. राबर्ट्स ने कहा कि मोबाइल संचार साधन तो है पर वे निजी सम्बन्ध भी खतम कर रहे हैं। **सौजन्य-राष्ट्रदूत, दिनांक ०९.१२.२०१२**

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

आर्यवीर दल शिविर २८ मई से ४ जून २०१३

ऋषि उद्यान, अजमेर

परोपकारी आषाढ़ कृष्ण २०७०। जुलाई (प्रथम) २०१३ ४३

Generated by Foxit PDF Creator © Foxit Software
http://www.foxitsoftware.com For evaluation only.

आर जे/ए जे/80/2013-2014 तक प्रेषण : १ जुलाई, २०१३ RNI. NO. ३९५९/५९

आर्यवीर दल शिविर २८ मई से ४ जून २०१३

ऋषि उद्यान, अजमेर

प्रेषकः

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर

(राजस्थान) - ३०५००१

आवरण : Mittal 9829797513